अंतर्स्थलीय मत्स्य एवं मात्स्यिकी विकास – तकनीकी पहलू

अनिल प्रकाश शर्मा • प्रदीप कुमार कटिहा
नर्वदा प्रसाद श्रीवास्तव • उत्पल भौमिक

केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्
बैरकपुर, कोलकाता – 700 120

अंतर्स्थलीय मत्स्य एवं मात्स्यिकी विकास – तकनीकी पहलू

अनिल प्रकाश शर्मा
प्रदीप कुमार कटिहा
नर्वदा प्रसाद श्रीवास्तव
उत्पल भौमिक

बुलेटिन न. 164

अप्रैल 2010

केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्
बैरकपुर, कोलकाता–700 120

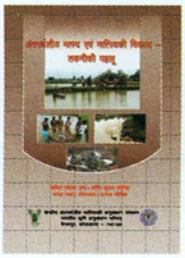

अंतर्स्थलीय मत्स्य एवं मात्स्यिकी विकास –तकनीकी पहलू

अनिल प्रकाश शर्मा, प्रदीप कुमार कटिहा,
नर्वदा प्रसाद श्रीवास्तव एवं उत्पल भौमिक

हिन्दी अनुवाद : श्री पी. आर. राव
सुश्री सुनीता प्रसाद

प्रकाशन सहायता : श्री मो. कासिम
सुश्री सुनीता प्रसाद
श्री सुकुमार साहा

कवर डिजाइन : सुजित चौधरी

ISSN 0970-616 X

© 2010 केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर,

केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्
बैरकपुर, कोलकाता–700 120

सत्यमेव जयते

Department of Agricultural Research and Education &
Indian Council of Agricultural Research,
Ministry of Agriculture, Government of India,
Krishi Bhavan, New Delhi - 110 114
Phone: (Off.) 91-11-23382629, 23386711;
Fax: 91-11-23384773

Dr. S. Ayyappan
Secretary & Director General

प्राक्कथन

निरंतर बढ़ती जनसंख्या ने खाद्य पदार्थों की अपेक्षित जरूरत पर भारी दबाव बनाया हुआ है। भोजन में प्रोटीन एवं पौष्टिक तत्वों की पूर्ति के लिये मछली भी एक अच्छा व सस्ता साधन है। अतः यह आवश्यक है कि उन सभी जल संसाधनों का उचित प्रबंधन तथा विकास हो जो इसका स्रोत हैं। इन संसाधनों की वस्तुस्थिति का ज्ञान विशेषकर मात्स्यिकी दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी के बहुरंगी एवं बहुआयामी जल क्षेत्रों में हुये अन्वेषणों ने उनके विकास में अहम् योगदान दिया है। अनुसंधान कार्यों की उपलब्धियों को संबंधित लोगों तक पहुंचना चाहिये। इसके लिये यह जरूरी है कि उक्त जानकारियां सरल एवं सुविधाजनक रूप में उपलब्ध हों। केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर विगत् 63 वर्षों से इस दिशा में सराहनीय कार्य कर रहा है।

यह हर्ष का विषय है कि संस्थान मत्स्य व मात्स्यिकी के विभिन्न पहलूओं पर तकनीकी लेखों का यह संकलन निकाल रहा है। आशा है कि यह सभी संबंधित लोगों के लिये उपयोगी एवं लाभकारी होगा।

मैं इस प्रकाशन से जुड़े सभी लोगों को हार्दिक बधाई देता हूं । साथ ही यह आशा करता हूं कि इस तरह के प्रयास आगे भी जारी रहेंगे।

नई दिल्ली
अप्रैल 2010

एस. अय्यप्पन

प्रस्तावना

अनिल प्रकाश शर्मा

प्रदीप कुमार कटिहा

नर्वदा प्रसाद श्रीवास्तव

उत्पल भौमिक

मत्स्य व मात्स्यिकी विकास और वृद्धि में अनुसंधान कार्यों की महत्वपूर्ण भूमिका है। देश में मत्स्य पालन की उल्लेखनीय प्रगति में विभिन्न मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थानों व उनके वैज्ञानिकों का विशेष योगदान है। केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर इस क्षेत्र में एक प्रमुख व अग्रणी संस्थान है। अनेक अंतर्स्थलीय जलतंत्रों जैसे नदी, जलाशय, ज्वारनदमुख व आर्द्र क्षेत्र आदि में यह संस्थान अनुसंधानरत है। साथ ही भौगोलिक सूचना प्रणाली के अंतर्गत संसाधन मूल्यांकन एवं मत्स्य व परितंत्र के स्वास्थ्य और प्रबंधन पर भी यहां अनुसंधान कार्य किये जा रहे हैं। संस्थान समय–समय पर इस क्षेत्र से जुड़े विभिन्न सरकारी, गैर–सरकारी व अन्य लोगों के लिये विषय–विशेष प्रशिक्षण भी आयोजित करता रहा है, जिसका लाभ अनगिनत लोगों को मिला है। संस्थान ने कई अवसरों पर देश तथा विदेश में भी अपने अनुसंधानों व उपलब्धियों को संबंधित लोगों तक पहुंचाया है।

जल संसाधनों से संबद्ध सभी भागीदारों को उस क्षेत्र के बारे में सही ज्ञान व जानकारी अत्यन्त जरूरी है। मत्स्य एवं मात्स्यिकी की कई विधाओं व समस्याओं, विशेषकर जलजीव पालन पर संस्थान के अनुभवी विशेषज्ञों के लेखों पर आधारित यह प्रकाशन तैयार किया गया है। हमें आशा है कि हमारा यह प्रयास सफल एवं सार्थक सिद्ध होगा और वह सभी इससे लाभान्वित होंगे जो इन सबका लक्ष्य रहे हैं।

हम उन सभी को हार्दिक धन्यवाद देते हैं जो इस कार्य में हमारे साथ रहे तथा हमारी सहायता की। आप सभी के सुझावों का स्वागत है ताकि भविष्य में इस प्रकाशन को और भी बेहतर बनाया जा सके।

बैरकपुर
अप्रैल 2010

अनिल प्रकाश शर्मा
प्रदीप कुमार कटिहा
नर्वदा प्रसाद श्रीवास्तव
उत्पल भौमिक

विषय–सूची

क्रम सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1	भारतीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान एवं विकास में सिफरी की उपलब्धियां	अनिल प्रकाश शर्मा, प्रदीप कुमार कटिहा एवं एन. पी. श्रीवास्तव	1
2	*जलाशय मात्स्यिकी प्रबंधन*	*एन. पी. श्रीवास्तव*	*13*
3	*बाढ़कृत मैदानी आर्द्र क्षेत्र का प्रबन्धन*	*एम. ए. हसन*	*18*
4	*जैविक मत्स्य कृषि की भूमिका*	*डी. नाथ*	*24*
5	*पेन व पिंजरा में मत्स्य पालन*	*जी. के. विन्सी*	*29*
6	*मात्स्यिकी तालाबों की मृदा एवं जल की गुणवत्ता एवं इनका उर्वरीकरण*	*ए. के. दास*	*34*
7	*मत्स्य रोग व निवारण*	*मानस कुमार दास*	*41*
8	*मत्स्य पोषकता एवं मत्स्य आहार की तैयारी*	*अंशुमन हाजरा*	*53*
9	*कार्प मछलियों का प्रेरित प्रजनन*	*उत्पल भौमिक*	*60*
10	*कॉमन कार्प का नियंत्रित प्रजनन*	*एम. के. बन्दोपाध्याय*	*73*
11	*कार्प मछलियों का बंध प्रजनन*	*अमिताभ घोष*	*77*
12	*रियरिंग तालाबों का प्रबन्धन*	*सुकुमार साहा*	*84*
13	*नर्सरी तालाबों का प्रबन्धन*	*सुकुमार साहा*	*87*
14	*मत्स्य पालन हेतु मत्स्य बीज परिवहन*	*एस. आर. दास*	*93*
15	*मिश्रित मत्स्य पालन*	*अर्धेन्दु मुखर्जी*	*97*
16	*वायुश्वासी मत्स्य पालन*	*एस. आर. दास*	*101*

क्रम सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ
17	*मत्स्य व मुर्गी/बत्तख सहपालन - जलकृषि में एकीकृत पालन का प्रयास*	*अमिताभ घोष*	*104*
18	*मीठाजल झींगा पालन*	*एम. के. मुखोपाध्याय*	*107*
19	*मीठाजल में रंगबिरंगी मछली पालन*	*वी. आर. सुरेश*	*113*
20	*मीठा जल-कृषि - एक आर्थिक मूल्यांकन*	*प्रदीप कुमार कटिहा*	*119*
21	*जल कृषि/मात्स्यिकी योजनाओं/परियोजनाओं के प्रतिपादन हेतु कुछ आवश्यक सुझाव*	*प्रदीप कुमार कटिहा नागेश कुमार बारीक*	*130*

अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान एवं विकास में सिफरी की उपलब्धियां

अनिल प्रकाश शर्मा, प्रदीप कुमार कटिहा एवं एन. पी. श्रीवास्तव
निदेशक एवं प्रधान वैज्ञानिक
केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर

भूमिका

मत्स्य संपदा के क्षेत्र में भारत विश्व में सबसे अधिक सम्पन्न एवं विविधता वाला देश है। देश में अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी लगभग सम्पूर्ण जलीय पारिस्थितिकी में उपस्थित है– चाहे वह हिमालय के शीत अंचलों के विभिन्न कृषि–जलवायु वाले क्षेत्र हों या ज्वारनदमुखी तटीय क्षेत्र। यह अंतर्स्थलीय विवृत जलीय संसाधन के तटीय व उप–तटीय क्षेत्र, जैविक उत्पादकता और मत्स्य बायोमास से भरपूर हैं। अतः इन संसाधनों का उपयोग मछुआ समुदाय के साथ ग्रामीण क्षेत्रों के गरीब लोगों के जीवन को सुधारने के लिये किया जा सकता है।

प्राकृतिक व मानव–निर्मित विवृत जल क्षेत्रों में मात्स्यिकी आय का एक प्रमुख साधन है। ये जलक्षेत्र नदीय और जलाशय क्षेत्रों के आस–पास बसने वाले लोगों की जीविकोपार्जन का मुख्य आधार हैं। प्राचीन काल से ही अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी भोजन, पोषण, जीविका और आर्थिक लाभ का एक महत्वपूर्ण स्रोत रहा है। बृहत और विविध जलक्षेत्र (नदी, ज्वारनदमुख, जलाशय, आर्द्रक्षेत्र, झील आदि) प्रग्रहण मात्स्यिकी के प्रधान स्रोत माने जाते हैं। वर्तमान में देश का कुल वार्षिक मत्स्य उत्पादन 76 लाख टन आंका गया है जिसमें केवल अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी का योगदान ही 46 लाख टन (60.53%) है। अंतर्स्थलीय मत्स्य उत्पादन में वृद्धि इस क्षेत्र के महत्व को दर्शाती है।

भारत में अंतर्स्थलीय मीठाजल मत्स्य कृषि अनेक वर्षों से की जा रही है पर संरक्षण और परिसंपत्ति की दृष्टि से अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी की भूमिका अहम् है। प्राकृतिक

अंतर्स्थलीय विवृत जल संसाधन ऐसे मत्स्य जर्मप्लाज्म के स्रोत हैं जिससे जलकृषि के लिये मत्स्य बीजों एवं उत्तम अण्डों का प्रबंध हो सके। अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी का मछुआ समुदाय के सामाजिक–आर्थिक उन्नयन में गहरा प्रभाव है। पारम्परिक तरीके से होने वाले मत्स्य पालन में लाभ कम होता है और पिछले कुछ दशकों से इन जल क्षेत्रों विशेषकर नदी, आर्द्रक्षेत्र इत्यादि की मात्स्यिकी में बहुत गिरावट आई है और इसलिये मात्स्यिकी पर निर्भर समुदायों के भरण–पोषण और आर्थिक जीवन पर भी प्रभाव पड़ा है। बढ़ते हुये पर्यावरणीय अपकर्ष और विवृत जलक्षेत्रों में जलप्रवाह में कमी के कारण मात्स्यिकी की स्थिति और भी चिन्ताजनक हो गई है। विवृत जल मात्स्यिकी में अधिक लोगों की भागेदारी होती है अतः इसके संरक्षण और संवर्धन के लिये नीति निर्माण की आवश्यकता है जिससे जल प्रबंधन/आवंटन में मात्स्यिकी को सहायता मिले। अतः हमें यह प्रयास करना चाहिये कि विवृत जल मात्स्यिकी से नदियों में उपलब्ध मत्स्य संपदा की रक्षा हो सके साथ ही उत्पादन के संवर्धन के लिये कारगर कदम उठाये जायें। गत् तीन पंचवर्षीय योजनाओं में विवृत जल मात्स्यिकी के संभावित जलक्षेत्र जैसे जलाशय या बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्र से मत्स्य उत्पादन पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। मछुआरों के पारंपरिक ज्ञान और दक्षता और अनुसंधान व विकास अधिकरणों से प्राप्त प्रशिक्षण की सहायता से उत्पादन में वृद्धि और दीर्घकालिक उपज प्राप्त की जा सकती है। इसलिये अनुसंधान कार्य में अंतर्स्थलीय विवृत जल क्षेत्र का महत्व बढ़ता जा रहा है। केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर अपने अनुसंधान कार्य द्वारा सतत् अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी के लिये कार्य कर रहा है। यहां मात्स्यिकी विकास की दिशा में संस्थान की अनुसंधान उपलब्धियों एवं भावी योजनाओं को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है।

अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी संसाधन व उत्पादन में बदलते पर्यावरणीय, संस्थागत एवं संचालन संबंधी परिवर्तन के कारण संस्थान ने अनुसंधान की भावी चुनौतियों के लिये विभागों/प्रभागों का पुनरीक्षण किया है। वर्तमान में संस्थान के मुद्दों मे निम्नलिखित परिवर्तन किये गये हैं।

"इष्टतम उत्पादन" से ***"धारणीय उत्पादकता"***

"मछली ही एकल लाभ" से ***"पारिस्थितिकी स्वास्थ्य व इससे लाभ"***

इस परिवर्तन से संस्थान की दूरदर्शी विचारधारा और लक्ष्य में भी परिवर्तन हुआ है।

दूरदर्शी विचारधारा

जीविकोपार्जन और सामाजिक लाभ हेतु विवृत जल निकायों से अधितकम मत्स्य उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि।

लक्ष्य

मात्स्यिकी संवर्धन, जैव–विविधता संरक्षण तथा पारिस्थितिकी संबंधित सेवाओं के समायोजन के लिये सूचना आधारित प्रबंधन और अंतर्स्थलीय विवृत जल निकायों से अधिकाधिक सामाजिक लाभ प्राप्त करना।

पुनरीक्षित अधिदेश

- अंतर्स्थलीय विवृत जल क्षेत्र जैसे नदी, ज्वारनदमुख जिसमें लैगून, जलाशय एवं आर्द्रक्षेत्र भी सम्मिलित हैं, की मत्स्य व मात्स्यिकी पर वैज्ञानिक आंकड़ें तैयार करना ।
- जलाशय एवं आर्द्रक्षेत्र में दीर्घकालिक मात्स्यिकी के लिये पारिस्थितिकी पर आधारित प्रबंधन प्रणाली का विकास ।
- मात्स्यिकी पर बदलते पारिस्थितिकी के प्रभाव का मूल्यांकन तथा उसे कम करने के लिये योजनायें बनाना ।
- अंतर्स्थलीय जलीय परितंत्रों का संरक्षण एवं इनकी मात्स्यिकी के लिये उपयुक्त योजनायें उपलब्ध कराना।

संस्थान की उपलब्धियां

संस्थान की उपलब्धियों को समयानुसार दो भागों में बांटा गया है – वर्ष 1986 से पूर्व और वर्ष 1986 के बाद ।

वर्ष 1986 से पूर्व संस्थान की उपलब्धियां

नदियों से मत्स्य बीज की संभावना

संस्थान ने नदियों से मछलियों के जीरा संग्रहण जालों का मानकीकरण किया है। इस तकनीक की उपलब्धियों में मछलियों के बीजों का संग्रहण, जालों के आकार, आमाप और ऐसे जाल जो किसी भी जलीय वातावरण व परिस्थिति के अनुकूल हैं, आदि सम्मिलित हैं। संस्थान के द्वारा विकसित जाल की क्षमता पारंपरिक जालों की तुलना में पांच गुणा अधिक है तथा विभिन्न नदियों में मछुआरों द्वारा इन जालों से मछलियों के बीज संग्रहण किये जा रहे हैं।

मत्स्य बीज का परिवहन

मत्स्य बीज परिवहन की पारंपरिक प्रणाली में मछली के बीजों को मिट्टी की हंडियों में डाल कर उनको एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाया जाता है जिसमें बहुत से बीज परिवहन के दौरान मर जाते हैं। अतः संस्थान ने मछली व झींगा मछलियों के बीजों, छोटे बच्चों और अंगुलिकाओं के पैकिंग और परिवहन के लिये एक नई तकनीक का विकास किया है जिसमें इनको पोलिथिन की थैलियों में ऑक्सीजन के साथ भरा जाता है। इस तकनीक के कारण बीज परिवहन के दौरान इन मछलियों के बीजों की मृत्युदर में बहुत कमी आई है।

प्रेरित प्रजनन एवं कार्प मछलियों का नर्सरी प्रबंधन

किसी भी पालन प्रणाली की प्रथम आवश्यकता बीजों की सुनिश्चित् उपलब्धता है। कार्प मछलियों के प्रेरित प्रजनन की सफलता मत्स्य पालन विकास की दिशा मे एक क्रांतिकारी कदम है। यह तकनीक अन्य पालन तकनीकों जैसे चयनित प्रजनन, बहु प्रजनन और कृषि योग्य मछलियों के संकर प्रजनन आदि के लिये बहुत ही कारगर सिद्ध हुई है।

संस्थान ने प्रभावी नर्सरी प्रबंधन तकनीक का विकास भी किया है जिससे संग्रहण का घनत्व बहुत अधिक होने पर भी उत्तरजीविता दर 80 प्रतिशत तक रहती है। पारंपरिक प्रणाली में मृत्युदर 50 प्रतिशत या उससे अधिक भी होती थी।

चाइनिज कार्प का बंध प्रजनन

बंध प्रजनन तकनीक के सफलतम विकास से घेरे में चाइनिज कार्प मछलियों के प्रजनन में अत्यन्त ही वृद्धि हुई है। यह पांरपरिक प्रणाली का ही संशोधित रूप है। मानसून के महीनों में जल प्रवाह को नियमित कर इस प्रजनन प्रणाली का विकास किया गया है।

समन्वित मत्स्य पालन

खाने योग्य बड़ी मछलियों के उत्पादन के लिये मिश्रित मत्स्य पालन संस्थान द्वारा विकसित उन्नत तकनीकों में से एक है। यह तकनीक इको–निस एप्रोच (Eco-niche approach) पर आधारित है। इससे कार्प पालन प्रणाली में एक निर्णायक मोड़ आया जिससे टैंक/तालाबों से प्राप्त उपज में पारंपरिक तरीके से होने वाली उपज की तुलना में दस गुणा से भी अधिक वृद्धि हुई है।

वायु–श्वासी मछलियों का प्रजनन एवं पालन

संस्थान ने वायु–श्वासी मछलियों जैसे– *सिंघी, मागुर, कवई* और *मॅरेल* के लिये ऐसी तकनीक का विकास किया है जिसमें लागत कम होती है। यह तकनीक उन जल निकायों के लिये प्रभावी हैं जिन्हें अप्रयोजनीय समझ कर छोड़ दिया गया है।

जलीय अपतृण नियंत्रण

जल निकायों में जलीय मेक्रोफाइट्स के अत्यन्त जमाव के कारण मत्स्य उत्पादन और जल के सही उपयोग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस समस्या के निराकरण के लिये संस्थान ने पारिस्थितिकी–उन्मुख तकनीक का विकास किया है जिसमें अपतृण ग्रसन के प्रकार और प्रकृति को ध्यान में रख कर विभिन्न प्रकार की दवाइयों और रसायन का प्रयोग किया जाता है।

एकीकृत मत्स्य पालन

गहन पालन तकनीक (मिश्रित मत्स्य पालन) में लागत मूल्य अधिक होती है इसलिये इसमें होने वाले व्यय को कम करने के लिये इसे किसी दूसरे पालन

के साथ एकीकृत किया गया, साथ ही इसमें घरेलू बहिःस्राव का भी उपयोग किया जाता है। एकीकृत मत्स्य पालन का आधार जैव पुनरावर्तन की हमारे देश में बहुत संभावना है। संस्थान द्वारा विकसित इस तकनीक से जैव अवशेषों के पुनरावर्तन और उपयोग के साथ–साथ उनका प्रशोधन भी किया जाता है।

बड़े और मध्यम जलाशयों में मात्स्यिकी प्रबंधन

संस्थान द्वारा विकसित पारिस्थितिकी–उन्मुख जलाशय प्रबंधन तकनीक और देश के अलग–अलग जलाशयों में इसके अनुप्रयोग से औसत मत्स्य उत्पादन में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है।

वर्ष 1986 के उपरांत संस्थान की उपलब्धियां

छोटे जलाशयों में मात्स्यिकी प्रबंधन

छोटे जलाशयों के प्रबंधन के लिये संस्थान द्वारा विकसित पालन–आधारित प्रग्रहण तकनीक यह प्रमाणित करती है कि वर्तमान में होने वाले औसत मत्स्य उत्पादन जो 50 कि.ग्रा. प्रति हे. प्रति वर्ष है, में दुगनी वृद्धि अर्थात् 100 कि.ग्रा. प्रति हे. प्रति वर्ष की जा सकती है।

हिल्सा का कृत्रिम प्रजनन व इसकी हैचरी

फरक्का बांध के निर्माण से गंगा नदी के मध्य भागों में हिल्सा मात्स्यिकी में बहुत ही ह्रास हुआ है और इसलिये रैंचिंग के लिये बड़े पैमाने पर मत्स्य प्रजातियों के बीजों के उत्पादन की आवश्यकता है। अतः संस्थान ने हिल्सा मछली के बीज उत्पादन के लिये कृत्रिम प्रजनन व हिल्सा प्रबंधन तकनीक का विकास किया है।

मात्स्यिकी के साथ पर्यावरणीय प्रभाव का आंकलन

अंतर्स्थलीय विवृत जल मात्स्यिकी में पर्यावरणीय आंकलन एक महत्वपूर्ण पक्ष है क्योंकि इससे प्राप्त उपज जलीय पर्यावरण और जैव–विविधता की स्थिति पर प्रत्यक्ष रूप से निर्भर है। संस्थान ने ऐसी पर्यावरणीय समस्याओं के आंकलन एवं निराकरण के लिये उपयुक्त तकनीक का विकास किया है।

अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी संसाधन और उत्पादन का आंकलन

देश में अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी संबंधी विश्वसनीय आंकड़ों की कमी है। इसका कारण है – विभिन्न अधिकरणों द्वारा अलग–अलग तरीकों से आंकड़ों का संग्रहण। आंकड़ों के संग्रहण की कोई निर्दिष्ट प्रणाली अपनाई नही जा रही थी। संस्थान ने अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी संसाधन और उत्पादन के आंकलन के लिये एक मानक प्रणाली का विकास किया है जिसको सभी प्रदेशों के मत्स्य विभागों को उपयोग के लिये दिया गया है।

बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्र मात्स्यिकी विकास

बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्र में मत्स्य उत्पादन संवर्धन के लिये अपार संभावनायें हैं। इन अलग–अलग जल निकायों में प्रबंधन मानक भिन्न–भिन्न हैं जो इन जल निकायों की जलग्रहण क्षमता तथा इनके पारिस्थितिकी में बाहरी कारकों पर निर्भर करते है। इन पारिस्थितिकियों में कम से कम बाहरी हस्तक्षेप से प्राकृतिक खाद्य श्रृंखला का उपयोग कर इन आर्द्रक्षेत्रों के मत्स्य उत्पादन में वृद्धि इस प्रबंधन प्रणाली की विशेषता है।

बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्र और जलाशयों में पेन पालन

संस्थान ने जलाशयों और गोखुर झीलों में पेन (बाड़ा) में मत्स्य बीज पालन तथा कार्प मछली और बड़ी झींगा मछलियों (*मेक्रोब्रेकियम रोजेनबर्गी*) के बीज पालन तकनीक का विकास किया है। गहन पालन प्रणाली पर आधारित इस तकनीक से विवृत जल संसाधन क्षेत्रों से अधिक उत्पादन किया जा रहा है।

जलाशयों और बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्र में पिंजरे में पालन

संस्थान ने जलाशयों और बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्रों में पिंजरों में मत्स्य बीज तथा कार्प मछलियों के बीज प्रजनन तकनीक का विकास किया है। इसमें कम लागत वाली स्थानीय रूप से उपलब्ध संग्रहण पदार्थों का प्रयोग किया जाता है। इस तकनीक से गुणवत्ता वाले बीजों की उपलब्धता में भी वृद्धि हुई और विवृत जल क्षेत्रों में पालन आधरित मात्स्यिकी की संभावना भी बढ़ गई है।

सूचना, प्रौद्योगिकी और प्रोटोकोल

विवृत जल क्षेत्रों में प्रतिपालित मात्स्यिकी के लिये संस्थान ने बहुत सी तकनीकों का विकास किया है और स्थल विशेष पारिस्थितिकी में इनका प्रदर्शन भी किया है। इन तकनीकों से मत्स्य उत्पादन में बहुत ही अधिक वृद्धि हुई है। साथ ही संस्थान ने देश में फैले समस्त नदी, जलाशय, आर्द्रक्षेत्र, और ज्वारनदमुख के मात्स्यिकी लिम्नोलॉजी / पारिस्थितिकी, मत्स्य जनसंख्या परिवर्तन, प्रदूषण और सामाजिक–आर्थिक स्थिति पर एक बृहत् और उपयोगी डेटाबेस तैयार किया है। विभिन्न संसाधन और पहलूओं पर निर्मित डेटाबेस निम्नलिखित हैं :–

नदियों की पारिस्थितिकी और मात्स्यिकी

- देश की प्रमुख नदियों (यमुना, रावी, व्यास, गंगा) की पारिस्थितिकी, जैव–विविधता और मात्स्यिकी पर वैज्ञानिक सूचना।
- नर्मदा नदी की पारिस्थितिकी, जैव–विविधता और मात्स्यिकी संबंधी कई वर्षों के आंकड़ों का संग्रहण जिससे संस्थान को बांधों के निर्माण से नदियों के पारिस्थितिकी और मात्स्यिकी में होने वाले परिवर्तन के आंकलन में सहायता मिल सके।
- व्यावसायिक रूप से महत्वपूर्ण नदीय मत्स्य प्रजातियों से संबंधित आंकड़ें, जिससे पुनःस्थापन योजना को कियान्वित किया जा सके।
- प्रमुख नदियों में विदेशी प्रजातियों की स्थिति पर सूचना जिसमें देशज प्रजातियों की मात्स्यिकी पर कोई सकारात्मक या नकारात्मक प्रभाव का आंकलन नही किया गया हो।
- गंगा नदी के अंतर्गत मछुआरों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति।

जलाशयों की पारिस्थितिकी और मात्स्यिकी

- मध्यम जलाशयों के लिये मात्स्यिकी प्रबंधन संबंधी विशेष मानक तरीके।
- कर्नाटक, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और तमिलनाडु के छोटे जलाशयों में मत्स्य उत्पादन में वृद्धि के लिये मात्स्यिकी संवर्धन तकनीक।

- मात्स्यिकी प्रबंधन और मत्स्ययन निवेश के आवंटन द्वारा मत्स्य उपज की इष्टतम प्राप्ति।
- कर्नाटक, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश के जलाशयों में खाने योग्य बड़ी मछलियों का प्रजनन और पदार्थों के संग्रहण के लिये पिंजरा व पेन पालन ।

बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्र की पारिस्थितिकी और मात्स्यिकी

- बिहार, पश्चिम बंगाल और असम के बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्रों में उत्पादन प्रकार्य संबंधी आंकड़ों का संकलन जिससे मात्स्यिकी विकास के लिये प्रबंधन योजनाओं को व्यवस्थित किया जा सके।
- बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्रों में मात्स्यिकी संवर्धन के विभिन्न प्रणालियों के लिये एक कार्यप्रणाली का विकास जिससे पश्चिम बंगाल, असम और बिहार में मत्स्य उत्पादन में वृद्धि की जा सके।
- पश्चिम बंगाल, असम और बिहार के आर्द्रक्षेत्रों में कार्प और बड़ी झींगा मछलियों (*मेक्रोब्रेकियम रोजेनबर्गी*) के प्रजनन के लिये पेन पालन तकनीक।
- बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्रों में संग्रहित किये जाने वाले मत्स्य बीज के लिये पिंजरा पालन तकनीक।
- असम, पश्चिम बंगाल और बिहार के आर्द्रक्षेत्रों में रंग–बिरंगी मत्स्य प्रजातियों को सूचीबद्ध करना।
- पश्चिम बंगाल, असम और बिहार के आर्द्रक्षेत्रों के मछुआरों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति।

ज्वारनदमुख और संबद्ध जल निकाय

- हुगली, नर्मदा और कृष्णा ज्वारनदमुख के आंकड़ों का संग्रंहण जिससे पारिस्थितिकी तंत्र प्रबंधन योजना कियान्वित की जा सके।
- हुगली–मातलह ज्वारनदमुख और गंगा नदी में हिल्सा मात्स्यिकी गतिकी

पर फरक्का बांध के कारण पड़ने वाले प्रभाव के आंकलन संबंधी डेटा का संग्रहण।

- हुगली–मातलह ज्वारनदमुख व्यवस्था के शैवाल घनत्व पर एक संवादात्मक (interactive) सीडी।
- पुनःस्थापन योजना के लिये व्यावसायिक रूप से महत्वपूर्ण मत्स्य प्रजातियों के जीवविज्ञान पर डेटा।
- चिलका और वेम्बानाद झीलों के पारिस्थितिकी, मात्स्यिकी और जैव–विविधता पर टाइम सीरीज डेटा का निर्माण जिससे मात्स्यिकी प्रबंधन योजना को क्रियान्वित किया जा सके।

मत्स्य रोग और पर्यावरण

- अंतर्स्थलीय विवृत जल क्षेत्र में शीघ्र व दीर्घकालिक पर्यावरणीय प्रभाव के आंकलन के लिये प्रोटोकोल।
- बहिःस्राव, सघन धातु और कीटनाशकों के परिपेक्ष्य में विभिन्न नदी व्यवस्था में प्रदूषण का स्तर संबंधी विस्तृत डेटाबेस तथा जैव समुदाय जैसे मत्स्य व मात्स्यिकी पर इनका प्रभाव।
- विवृत जल क्षेत्र में मत्स्य रोगजनक कारक की सूची एवं पहचान। साथ ही विभिन्न मत्स्य रोगों के नियंत्रण के लिये कारगर उपाय।

संसाधन आंकलन

- अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी संसाधन और मत्स्य उत्पादन पर आंकड़ों के संगंहण हेतु प्रणाली व्यवस्था का मानकीकरण जिससे विश्वसनीय डेटाबेस का निर्माण किया जा सके।
- ज्वारनदमुखी और नदीय जलक्षेत्रों से व्यावसायिक रूप से महत्वपूर्ण मत्स्य प्रजातियों के जनसंख्या गतिकी पर सूचनाओं का संग्रहण जिससे मत्स्ययन को नियंत्रित किया जा सके।
- राजस्थान, पश्चिम बंगाल, असम और बिहार के अंतर्स्थलीय विवृत जल क्षेत्रों (10 हे. से कम) का रिमोट सेंसिंग तकनीक द्वारा मैपिंग।

अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी संसाधन का मूल्यांकन

- अंतर्स्थलीय विवृत जल मात्स्यिकी के मूल्यांकन के लिये प्रणाली व्यवस्था का मानकीकरण।
- विभिन्न मात्स्यिकी जल क्षेत्र जैसे, जलाशय, बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्र, नदी और ज्वारनदमुख में जीविकोपार्जन मैं मात्स्यिकी की भूमिका पर सूचनाओं का संग्रहण।
- संस्थागत व्यवस्था और हिस्सेदारी के प्रकार के अनुसार अंतर्स्थलीय जल क्षेत्रों के महत्व और सेवाओं में विविधता।

भावी चुनौतियां

संस्थान द्वारा अर्जित उपरोक्त उपलब्धियों के प्रलेखन और समीक्षा से यह पता चलता है कि देश के मात्स्यिकी विकास की दिशा में अभी भी ऐसे बहुत सारे मुद्दे हैं जिन पर संस्थान को ध्यान देना है तथा उनके लिये योजना क्रियान्वित करनी है। कुछ मुद्दों को निम्नलिखित रूप में दिखाया है :–

- अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी पर उपलब्ध आंकड़ों का संग्रहण तथा अतिरिक्त डेटाबेस तैयार करना।
- जलाशयों और बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्र में मात्स्यिकी संवर्धन और प्रबंधन।
- जलाशयों और बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्र में प्रौद्योगिकी विकास द्वारा मत्स्य उत्पादन में वृद्धि।
- अंतर्स्थलीय विवृत जल क्षेत्रों में विलुप्त हो रही मत्स्य प्रजातियों का आंकलन और उनके संरक्षण के लिये कारगर उपाय।
- मत्स्य भंडार और खाद्य श्रृंखला में जल की गुणवत्ता में परिवर्तन के कारण होने वाले प्रभाव का आंकलन।
- पर्यावरणीय प्रभाव का आंकलन और मत्स्य रोग।
- नदीय और ज्वारनदमुख में मात्स्यिकी प्रबंधन और विशेष मात्स्यिकी।

- पर्यावरण और संरक्षण के विभिन्न पहलूओं पर हिस्सेदारों को उनसे अवगत कराना।
- उत्तम योजना कार्यान्वयन के लिये अंतर्स्थलीय विवृत जल मात्स्यिकी संसाधन का विश्वसनीय आंकलन, और
- अंतर्स्थलीय विवृत जल क्षेत्रों के मछुआरों के आर्थिक–सामाजिक स्तर का मूल्यांकन और संसाधन प्रबंधन में उनकी सक्रिय भागेदारी।

अतः विवृत जल क्षेत्र और उसके संसाधन प्रबंधन के मूल कारकों के विकास में संस्थान द्वारा की गई पहल प्रतिपालित मत्स्य भंडार एवं विशेष मात्स्यिकी की दिशा में और भी विकास की संभावना को दर्शाती है। इन तकनीकों से कुछ विशेष स्थानों के भूमिहीन मछुआरों के जीविकोपार्जन में सहायता मिलेगी परन्तु साथ ही इनके प्रचार, प्रसार और कार्यान्वयन में बहुत सारी बाधायें भी हैं। इसके लिये अनुसंधान व विकास अधिकरण, नीति निर्माण संस्थायें और योजना बनाने वालों का ध्यानाकर्षण आवश्यक है। इस प्रकार से खाद्य समस्या के निराकरण के साथ–साथ भूमिहीन मछुआरों की गरीबी दूर होगी और उनका उन्नयन होगा।

जलाशय मात्स्यिकी प्रबंधन

एन. पी. श्रीवास्तव, प्रधान वैज्ञानिक
केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर,

भूमिका

भारत में जलाशय संसाधन को अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी विकास का भविष्य कहा जा रहा है जो पूर्णतः सही भी है। जहाँ अन्य जल संसाधनों जैसे नदी, ज्वारनदमुख, आर्द्र भूमि क्षेत्र आदि में मत्स्य उत्पादन के ह्रास के साथ उनके विकास की संभावनायें जटिल प्रतीत होती हैं, जलाशय ही ऐसे स्रोत हैं जो आशा की किरण दिखाते हैं। जलाशयों में मत्स्य विकास की अपार संभावनायें हैं । यह संसाधन मत्स्य संपदा से भरे हुये हैं। भारत में 3.14 मिलियन हे. के जलाशयी क्षेत्र में करीब 47% (1.48 मिलियन हे.) छोटे जलाशयों (1000 हे. से कम), 36% (1.14 मिलियन हे.) बड़े जलाशयों (5000 हे. से अधिक) तथा 17% (0.53 मिलियन हे.) मध्यम जलाशयों (1000-5000 हे.) के रूप में उपलब्ध हैं। वर्तमान में इन संसाधनों से प्राप्त मत्स्य उत्पादन काफी कम है। छोटे जलाशय (50 कि.ग्रा./हे.), मध्यम जलाशय (12 कि.ग्रा./ हे.) तथा बड़े जलाशय (11 कि.ग्रा./हे.) औसतन 24 कि.ग्रा./हे. का मत्स्य उत्पादन कर रहे हैं। लेकिन इन जलाशयों की वास्तविक उत्पादन क्षमता कई गुना अधिक है। छोटे जलाशय (100 कि.ग्रा./हे.), मध्यम जलाशय (75कि.ग्रा./हे.) तथा बड़े जलाशय (50 कि.ग्रा./हे.) औसत रूप में 75 कि.ग्रा./ हे. का उत्पादन करने मे सक्षम हैं। मत्स्य उत्पादन में कमी के कारणों में अपर्याप्त मत्स्य बीज का संचयन, मत्स्य बीज आमाप छोटा होना, जलाशय पारिस्थितिकी के अनुरूप उचित मत्स्य प्रजातियों का चुनाव न होना आदि प्रमुख हैं।

वास्तव में जलाशय मात्स्यिकी विकास के लिये उचित प्रबंधन की अत्यधिक आवश्यकता है। इन संसाधनों से सही एवं पूर्ण मत्स्य दोहन अभी तक हो ही नहीं पाया है। जलाशयों से उनकी पारिस्थितिकी के अनुरूप वैज्ञानिक पद्धति द्वारा सुनियोजित प्रबंधन करके अधिक से अधिक मत्स्य उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

जलाशय संसाधन

जलाशय मानव निर्मित अनुपम एवं बेजोड़ बहुउद्देशीय जल संसाधन हैं। जल की स्थिर व अस्थिर दोनों ही अवस्थायें इन्हीं जल स्रोतों में एक साथ पाई जाती है। नदियों पर बाँध बनने से उनकी पारिस्थितिकी में कई परिवर्तन आते हैं। अनेक जीव-जन्तु, वनस्पतियाँ व अन्य नदीय समुदाय इस परिवर्तन के शिकार बनते हैं। जहाँ कई समुदाय प्रायः नष्ट ही हो जाते हैं, कई दूसरे अनुकूल वातावरण में चले जाते हैं लेकिन जो काफी सख्त होते हैं वही उस बदले हुये परिवेश में रह पाते हैं।

प्रत्येक जलाशय तीन विभिन्न परिस्थतियों से गुजरता है। निर्माण के 2-3 वर्षों तक जलाशय की प्रारंभिक स्थिति काफी उत्पादक रहती है। इस समय जलाशय में भोजन की मात्रा अत्यधिक होती है। प्लवक, नितल जीवों की प्रचुरता तथा अधिक पोषक तत्वों की उपलब्धता होती है। ऐसे ही समय में जलाशय का सही मत्स्य बीज द्वारा संचय किया जाना चाहिये। ऐसा न करने पर जलाशय में कैटफिश तथा मिनोज अपना स्थान बना लेते हैं जो बाद में भारतीय सफर मछलियों के विकास में बाधक बनते हैं तथा उनका जलाशय में स्थापित होना कठिन हो जाता है।

इसके पश्चात् 'ट्रोफिक डिप्रेशन' की स्थिति आती है जिसमें जैविक समुदाय के विकास में पूर्व की तुलना में कमी आती है। इस अवस्था का समय काफी लम्बा होता है जो 25 से 30 वर्षों का भी हो सकता है। अंतिम निर्णायक उर्वरता अवस्था इसके बाद आती है जो फिर स्थिर रहती है। इसमें पुनः जैविक समुदाय में वृद्धि होती है ।

जलाशयों की उत्पादकता इन स्रोतों की बाह्य संरचना व उससे संबंधित विभिन्न कारकों जेसे जलवायु,जल एवं मिट्टी के गुणों एवं जैविक स्थिति आदि पर निर्भर करती है।

मात्स्यिकी प्रबंधन

भारतीय जलाशयों में संतुलित एवं उचित प्रबंधन की कमी ही इन जलाशयों की वर्तमान दुर्दशा एवं कम मत्स्य उत्पादन के लिये विशेष रूप से जिम्मेदार है। जलाशयों का प्रबंधन उनकी सही पारिस्थितिकी के पूर्ण अध्ययन एवं ज्ञान के

अनुरूप होना चाहिये। विभिन्न पारिस्थितिकी अवस्थाओं में मत्स्य आचरण की जानकारी बहुत जरूरी है। जलाशय का दोहन उनकी वास्तविक उत्पादन क्षमता के आधार पर ही किया जाना चाहिये। वरना इसके अभाव में या तो मत्स्ययन अधिक हो सकता है या फिर कम ही रह जाता है। यह दोनों ही स्थितियाँ जलाशय के सफल प्रबंधन के लिये ठीक नही हैं। प्रत्येक जलाशय की अपनी समस्यायें हैं तथा किसी एक प्रबंधन योजना को सभी जलाशयों में एकरूपता से प्रयोग में नही लाया जा सकता।

जलाशयों का प्रबंधन संवर्धन आधारित मात्स्यिकी पर किया जाता है। जहाँ बड़े तथा मध्यम जलाशय प्रग्रहण पद्धति पर प्रबंधित होते हैं, छोटे जलाशयों का प्रबंधन पालन आधारित मात्स्यिकी के सिद्धांत पर किया जाता है। सही समय पर सही मत्स्य बीज का संचयन जलाशय मात्स्यिकी प्रबंधन व विकास की सबसे महत्वपूर्ण और बड़ी कड़ी है। संचय में सिर्फ मत्स्य बीज की संख्या ही नहीं, उनका वांछित आमाप, उचित प्रजातियाँ, संचयन का सही समय व उचित स्थान आदि भी बहुत आवश्यक हैं। संचय की जाने वाली प्रजातियाँ ऐसी होना चाहिये जिनकी वृद्धि दर अधिक व तेज हो; जिनकी उपभोक्ता मांग भी ज्यादा हो; जिनके बीज आसानी से उपलब्ध हो; जो संचित जल में प्रजनन की योग्यता रखती हों; जिनकी स्थानीय प्रजातियों से कोई प्रतिस्पर्धा न हो। बड़ी अंगुलिकाओं का संचयन उनकी अधिक उत्तरजीविता के कारण अच्छे उत्पादन में सहायक होती है। छोटी अंगुलिकायें (100 मि.मी. से कम) जलाशय में मौजूद भक्षीजीवों का आहार बनती हैं तथा मत्स्य उत्पादन में उनका योगदान नगण्य ही रह जाता है। जलाशयों में मछलियों के प्राकृतिक संभरण की अनिश्चितता भी मत्स्य बीज संचयन की आवश्यकता को स्पष्ट दर्शाती है। जलाशय निर्माण के तुरंत बाद मत्स्य बीज संचयन करके कम से कम प्रथम दो वर्षों तक प्रयोगात्मक मत्स्ययन ही किया जाना चाहिये। समय-समय पर संचित मत्स्य बीज की वृद्धि तथा उत्तरजीविता का मूल्यांकन बहुत आवश्यक है। मत्स्य बीज संचय का कोई विशेष फार्मूला नही है। यह जलाशय विशेष समस्या है। अनेक प्रस्तावित मानदण्डों के आधार पर बड़े जलाशयों को 100-200 अंगुलिकायें प्रति हे. मध्यम जलाशयों को 200-600 अंगुलिकायें प्रति हे. तथा छोटे जलाशयों को 600-1000 अंगुलिकायें प्रति हे. की दर से संचित किया जा सकता है।

भारत के अनेक छोटे जलाशयों में उचित वैज्ञानिक पद्धति द्वारा मत्स्य उत्पादन को आशातीत रूप से बढ़ाने के कई उदाहरण हैं। केरल राज्य के चुलियार व मीनकारा जलाशयों में मत्स्य उत्पादन को 10-35 कि.ग्रा./हे. से 105-275 कि.ग्रा./हे. तक बढ़ाया गया। कर्नाटक में मारकनहोली जलाशय का मत्स्य उत्पादन 5 कि.ग्रा./हे. से 70 कि.ग्रा./हे. हुआ। उत्तर प्रदेश के गुलरिया, बछरा एवं बाघला जलाशयों का उत्पादन भी 3 कि.ग्रा./हे. से बढ़कर 110-170 कि.ग्रा./हे. तक पहुँचा। तमिलनाडू के त्रिमूर्ति तथा अलीयार जलाशय भी 27-70 कि.ग्रा./हे. से 200-215 कि.ग्रा./हे. की मत्स्य वृद्धि को दर्शाते हैं।

नई तकनीकें

उन बड़े संसाधनों में जहाँ खुली अवस्था में मिश्रित पालन की संभावना नही है, मछलियों को पेन या केज में पाला जा सकता है। जलाशयों में केज की तुलना में पेन पालन ज्यादा सफल सिद्ध हुये हैं। पेन प्रायः कम गहरे पानी एवं समतल तली वाले स्थानों में लगाये जाते हैं जबकि केज गहरे या बहते हुये पानी में भी लगाये जा सकते हैं। केज मंदगति से प्रवाहित होने वाले जल क्षेत्रों में लगाते हैं ताकि उनमें पाली गई मछलियाँ अधिक से अधिक प्राकृतिक आहार प्राप्त कर सकें।

उपसंहार

भारत में जलाशयों का मात्स्यिकी प्रबंधन तथा जल उपयोग राज्यों के विभिन्न सरकारी व गैर-सरकारी विभागों के अधीन है। यह अत्यधिक दुःखद स्थिति है कि इन विभागों में जिनमें अनुसंधान संस्थायें, मत्स्य विभाग, सिंचाई विभाग तथा अन्य संबंधित संस्थायें शामिल हैं उनमें आपस में कोई समन्वय नहीं है। वर्तमान में भारतीय जलाशय अल्पसंचित, अल्पप्रयोजित एवं अव्यवस्थित हैं। यही कारण है कि इनसे कम मत्स्य उत्पादन हो रहा है। जलाशय में मत्स्ययन की विभिन्न प्रणालियाँ हैं। मुक्त मत्स्ययन लाइसेंस के साथ या उसके बिना से लेकर रॉयल्टी या संपूर्ण नीलामी तक प्रयुक्त हैं। मछुआ समुदाय को भी जो इस व्यवसाय की रीढ़ की हड्डी है उनकी मेहनत का सही हिस्सा नही मिल रहा है। लाभ का एक बड़ा हिस्सा बिचौलिये ले जाते हैं जिनको इस प्रक्रिया से पूरी तरह अलग किया जाना अति आवश्यक है। जलाशय मात्स्यिकी में भी सहकारिता अभियान प्रारंभ होना चाहिये

जहाँ मछुआरों के पास ही इस व्यवसाय के सारे अधिकार हों। देश के कुछ जलाशयों में इनका प्रयोग हुआ भी है तथा परिणाम काफी अच्छे व सुखद रहे हैं।

भिन्न-भिन्न जलाशयों के लिये उनकी पारिस्थितिकी व मात्स्यिकी के आधार पर अलग-अलग प्रबंधन योजनाओं तथा प्रथाओं की आवश्यकता होती है। इनके गहन अध्ययन एवं सही क्रियान्वयन द्वारा ही जलाशयों का मत्स्य उत्पादन संतोषजनक स्तर तक पहुँचाया जा सकता है।

***

बाढ़कृत मैदानी आर्द्र क्षेत्र का प्रबन्धन

एम. ए. हसन, वरिष्ठ वैज्ञानिक
केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर

भूमिका

आर्द्र भूमि के अंतर्गत अनेक प्रकार के प्राकृतिक जलीय संसाधन आते हैं, देश के उत्तरी भाग में कश्मीर घाटी की झीलों से लेकर दक्षिण के अनेक टैंकों व जलाशयों तक, पश्चिम के विशाल लवणीय क्षेत्र के खारा जलीय झीलों से गंगा तथा ब्रह्मपुत्र बेसिन की आर्द्र क्षेत्रों तक यह आर्द्र भूमि फैली हुई है। गंगा व ब्रह्मपुत्र नदीय तंत्रों का 0.21 मिलियन हेक्टर आर्द्र क्षेत्र अंतर्स्थलीय विवृत्त जल क्षेत्र मात्स्यिकी (open water fisheries) एवं इन बेसिनों में निवास करने वाले लाखों लोगों के लिए अति महत्वपूर्ण है। इन स्थिर व प्रवाही जल संसाधनों में उत्पादन की अपार क्षमता 1000-1500 कि.ग्रा./हे./वर्ष है। यह जल संसाधन जैव-विविधता का भंडार ही नहीं बल्कि असंख्य मछुआरों की जीविका भी है। वर्षों से इन जल संसाधनों से मछलियों का दोहन किया जा रहा है, पर अज्ञानतावश मछुआरों द्वारा अपनायी गई गलत पद्धतियों व जल क्षेत्रों में हुए परिवर्तनों के कारण अब इस मात्स्यिकी का विनाश हो रहा है। अतः इन संसाधनों को सतत् बनाए रखने हेतु इनका प्रबन्धन आवश्यक हो गया है।

ये जलीय संसाधन अनेक प्रकार की मत्स्य प्रजातियों का निवास स्थल है क्योंकि इन प्रजातियों को पुनर्जनन, विकास आदि हेतु यहाँ अनुकूल वातावरण मिलता है। यही प्रजातियाँ इन संसाधनों की मात्स्यिकी के आधार स्तम्भ हैं। इस प्राकृतिक सम्पदा को वैज्ञानिक पद्धति से दोहन किया जाए तो बेहतर परिणाम प्राप्त होंगे जिससे अधिक लोगों को रोजगार प्राप्त होगा, साथ ही राष्ट्रीय आय में भी वृद्धि होगी।

इन आर्द्र क्षेत्रों से न केवल खाने योग्य मत्स्य प्रजातियाँ प्राप्त होती हैं बल्कि इन क्षेत्रों में कुछ ऐसी रंगीन मछलियाँ भी उपलब्ध हैं जिनका अलंकारिक महत्व है तथा ये विदेशी मुद्रा अर्जित करने के साधन भी हैं।

पारिस्थितिकी एवं मात्स्यिकी की वर्तमान दशा

संस्थान द्वारा गंगा एवं ब्रह्मपुत्र बेसिन में किए गए अध्ययन के अनुसार बाढ़कृत आर्द्र क्षेत्रों को 1) चापझील (Oxbow lake) या नदी से कटी हुई जल निकाय 2) उथली भूमि में वर्गीकृत किया जा सकता है। जब जल निकाय का संबंध नदी से बना रहता है तो इसे खुला जल निकाय कहा जाता है और जब यह संबंध टूट जाता है तो इसे बंद जल निकाय माना जाता है। चूँकि ये सभी झील बाढ़कृत आर्द्र क्षेत्रों में स्थित हैं, बाढ़ के दौरान इनमें जल भर जाता है जिससे ये संसाधन पुनर्जीवित हो उठते हैं। अधिकतर आर्द्र क्षेत्र छोटे एवं उथले तथा सामान्य पारदर्शिता वाले होते हैं। बिहार एवं पश्चिम बंगाल के दक्षिण भाग के आर्द्र क्षेत्रों की मृदा एवं जल सामान्यतः क्षारीय होता है जब कि उत्तरी बंगाल एवं असम के आर्द्र क्षेत्र अम्लीय प्रवृत्ति के होते हैं। मृदा जैविक कार्बन से परिपूर्ण पर फासफोरस की कमी वाली होती है। नाइट्रोजन का स्तर निम्न से सामान्य स्तर का होता है। उथली गहराई एवं सामान्य पारदर्शिता जलीय मेक्रोफाइटस के विकास में सहायक होते हैं। मेक्रोफाइटस एवं मृत जैव पदार्थों से नितल जीवजातों में वृद्धि होती है। कार्प मछलियाँ जो आर्द्र क्षेत्र की प्रमुख उत्पादन है, पर अब इन प्रजातियों के स्थान पर अन्य प्रजातियाँ आ चुकी हैं। इन संसाधनों में मत्स्य आवास का परिवर्तन तथा अत्यधिक दोहन इस प्रकार के बदलाव का मुख्य कारण है।

इस संसाधनों का वैज्ञानिक प्रबन्धन नाम मात्र का होता है। अनेक जल निकायों में कोई प्रबन्धन ही नहीं है जिससे इनका अत्यधिक दोहन होता है। बिहार, असम और बंगाल के उत्तरी भाग में स्थित अधिकतर संसाधनों का मत्स्यन अधिकार पट्टे पर दिया जाता है। अतः अधिक लाभ पाने के लिए पट्टेदार इन संसाधनों का अत्यधिक दोहन करते हैं। पश्चिम बंगाल के दक्षिणी भाग में स्थित आर्द्र क्षेत्र मछुआरा सहकारी समितियों के अधीन हैं जिनमें वैज्ञानिक प्रबन्धन के नाम पर मत्स्य बीज संग्रहण आदि किया जाता है।

मात्स्यिकी प्रबन्धन

इन जलीय संसाधनों में उत्पादन की अत्यधिक क्षमता है, वैज्ञानिक प्रबन्धन से इनकी उपज में वृद्धि की जा सकती है। विभिन्न आर्द्र क्षेत्रों के लिए भिन्न-भिन्न प्रणालियों को अपनाया जाना चाहिए।

खुले आर्द्र क्षेत्रों (open wetlands) का प्रबन्धन

खुले आर्द्र क्षेत्रों में नदीय स्त्रोत से अनेक मत्स्य प्रजातियाँ प्रजनन हेतु चली आती हैं। इन आर्द्र क्षेत्रों का पर्यावरण अनेक प्रजातियों के प्रजनन हेतु उपयुक्त है। ये प्रजातियाँ ही खुले आर्द्र क्षेत्रों की मुख्य मात्स्यिकी है। अतः इनका प्रबन्धन अति महत्वपूर्ण है।

बारहमासी नदियों से संलग्न खुले आर्द्र क्षेत्रों में मत्स्य बीजों के परिमाण में वृद्धि नहीं की जा सकती है। अतः इनमें मत्स्य बीजों की स्वतः आपूर्ति की व्यवस्था, दायित्वपूर्ण मत्स्यन कार्य ताकि प्रजनकों एवं छोटी मछलियों का शिकार न किया जा सके, मत्स्य आवास का संरक्षण आदि कार्य प्रबन्धन के अंतर्गत किया जाना चाहिए। इस प्रकार के संसाधन में निम्नलिखित प्रबन्धन कार्य किया जाना लाभदायक होगा।

- नदी से बने लिंक चैनल में किसी प्रकार का अवरोध न हो ताकि प्रजनन काल के दौरान प्रजनक मछलियाँ यहाँ आ सकें।
- अभयारण्य घोषित कर प्रजनन स्थल का संरक्षण।
- मछलियों के आमाप संबंधी नियम।
- मत्स्यन बंद रखने की अवधि का निर्धारण।
- आर्द्र क्षेत्र के उन भागों को सुरक्षित स्थान के रुप में रखा जाए जहाँ स्थूल पादप अधिक उपलब्ध हैं।

जिन आर्द्र क्षेत्रों का संबंध नदी के साथ केवल मानसून के दौरान बनता है, उनमें उपर्युक्त प्रबन्धन उपायों के अलावा मेजर कार्प मत्स्य बीजों को (10 से.मी. से बड़ी अंगुलिकाओं को) संसाधन की धारण क्षमता के अनुरुप संग्रहित किया जाना चाहिए।

बंद प्रकार (closed type of wetlands) के आर्द्र क्षेत्रों की मात्स्यिकी प्रबन्धन

इस प्रकार के जल निकायों की मत्स्य उपज बढ़ाने में सबसे बड़ी समस्या है इनमें खरपतवारों का भरा होना। इनके प्रभावशाली प्रबन्धन के लिए पर्यावरण, संग्रहण, प्रजातियाँ एवं मत्स्य आवास आदि की समग्र विवेचना आवश्यक है। इनके प्रबन्धन की मौलिक योजना मत्स्य बीज संग्रहण एवं उपज प्राप्ति की है। आर्द्र क्षेत्र में सामान्यतः पोषक तत्व एवं मत्स्य आहार जीवजातों की कमी नहीं होती है जो मत्स्य विकास के लिए पर्याप्त है। मत्स्य पालन में विकास मत्स्य बीज संग्रहण घनत्व पर

निर्भर रहता है। इन जल निकायों में उचित प्रजातियों को उपयुक्त आमाप एवं संग्रहण घनत्व पर संग्रहित कर सही समय एवं आमाप की मछलियों को निकालने पर अच्छी उपज दर प्राप्त होती है। इन बातों का निर्धारण प्रत्येक जल निकाय विशेष के लिए अलग अलग किया जाना चाहिए। अतः मौलिक रुप से निम्नलिखित तथ्यों से योजना बनाना आवश्यक है -

- संग्रहित मछलियों की आमाप
- संग्रहण घनत्व
- मत्स्यन प्रयास
- पकड़ने योग्य मछलियों का आमाप
- प्रजातियों का प्रबन्धन
- प्रजातियों का चयन
- मत्स्यन जालों का चुनाव

प्रग्रहण एवं पालन पर आधारित मात्स्यिकी

कुछ ऐसी प्रबन्धन प्रणालियाँ भी हैं जिनमें प्रग्रहण मात्स्यिकी एवं पालन पर आधारित मात्स्यिकी के पहलूओं को मिला-जुलाकर सुझाया गया है। इस प्रणाली के अंतर्गत आर्द्र भूमि के सीमान्त क्षेत्र में पालन पद्धति पर आधारित मात्स्यिकी कार्य किया जाए जबकि इसका केन्द्रीय भाग प्रग्रहण मत्स्यिकी कार्य के लिए छोड़ दिया जाए। इस प्रणाली के तहत आर्द्र क्षेत्र की परिधि के निकट छोटे छोटे ढ़ाँचे बनाऐं जिन्हें मत्स्य पालन के लिए उपयोग किया जा सके। इनमें से कुछ ढ़ाँचों को मत्स्य बीज उत्पादन कार्य के लिए उपयोग किया जा सकता है और ये मत्स्य बीज इस जल निकाय के अलावा अन्य क्षेत्रों के लिए भी उपयोगी होगा।

मत्स्य प्रजातियों का विकल्प

बील मात्स्यिकी में मत्स्य प्रजातियों का प्रबन्धन काफी महत्वपूर्ण है। मत्स्य प्रजातियों के चयन के अनेक विकल्प हैं।

भारतीय मेजर कार्प मछलियाँ

बंद प्रकार के बीलों में पालन पद्धतियों पर आधारित मात्स्यिकी के तहत भारतीय मेजर कार्प मछलियों का उत्पादन किया जा सकता है, क्योंकि इनकी मात्स्यिकी

मत्स्य बीज संग्रहण पर आधारित होती है। प्राकृतिक रुप से मत्स्य आपूर्ति कम या नहीं होने पर इन प्रजातियों के बीजों को संग्रहित करना बेहतर विकल्प है। ये प्रजातियाँ तेजी से विकास करती हैं एवं जल निकाय में उपलब्ध आहार का उपभोग करती हैं। संग्रहण हेतु प्रजाति अनुपात एवं घनत्व का निर्धारण जल निकाय विशेष में उपलब्ध मत्स्य आहार जैसे - प्लवक, बेन्थोस आदि के अनुसार किया जाता है।

देशी मछलियाँ

यह आवश्यक नहीं कि सभी बीलों को कार्प मात्स्यिकी के रुप में विकास किया जाय। यह भी बेहतर होगा कि यदि स्थानीय प्रजातियों जैसे - *एनाबास टेस्टिडूनियस,* क्लेरियस *बेट्राक्स, ओमपॉक* प्रजाति *एम्बलीफेरिनगोडोन मोला, गुडुसिया चपरा,* पुनटियस प्रजाति *मैक्रोगनेथास* आदि का भी विकास किया जाय। इन प्रजातियों की कम उपज इनकी उच्च बाजार मूल्यों द्वारा पूर्ति होती है। बिहार के अनेक चापझीलों में मोलस्क की भरमार है। इस प्रजाति का समुपयोजन बिल्कुल नहीं किया जाता है। इसके उपयोग के लिए *पंगासियस पंगासियस* प्रजाति का संग्रहण करना लाभदायक होगा।

अलंकारिक व रंगीन मछलियाँ

विगत वर्षों में किये गये अध्ययनों से यह ज्ञात होता है कि इन जलीय क्षेत्रों में खाने योग्य मछलियों के अलावा अनेक प्रकार की सुन्दर एवं आकर्षक रंगीन मत्स्य प्रजातियाँ भी उपलब्ध हैं। इस सूचना तथा रंगीन मछलियों की बढ़ती हुई माँग से यह स्पष्ट होता है कि इन जल निकायों में इनके पालन की संभावनाएँ हैं जिससे काफी आर्थिक लाभ हो सकता है।

पेन पालन विधि

बील के सीमांत क्षेत्र में लगे पेन संरचनाओं में मछली व झींगों के पालन से मत्स्य उत्पादन में बढ़ोत्तरी तथा मत्स्य पालकों के लिए अतिरिक्त आय का स्त्रोत बन सकता है जो इन आर्द्र क्षेत्रों पर अपनी जीविका के लिए निर्भर रहते है। बिहार के विस्तृत आर्द्र क्षेत्र में पेन पालन विधि द्वारा मीठे जल मछलियों तथा झींगों का सफलतापूर्वक पालन किया गया है एवं इस तकनीक को अपनाने के लिए अभ्यास पुस्तिकाएँ तैयार की गई हैं। पेन पालन के लिए प्लवकभोजी, अपरदहारी एवं अधस्थलभोजी प्रजातियाँ उपयुक्त हैं। देशी एवं विदेशी कार्प प्रजातियों के साथ मीठे जल के बड़े झींगों के पालन को भी बड़ी सफलता प्राप्त हुई है। आर्थिक दृष्टि से केवल मीठे जल के बड़े झींगों का पालन लाभदायक है। मिश्रित पालन

के लिए *कतला कतला, लेबियो रोहिता* तथा *सिरहीनस मृगाला* उपयुक्त हैं। कार्प एवं झींगों के मिश्रित पालन के लिए उपर्युक्त मत्स्य प्रजातियों के साथ मीठाजल प्रजाति *मैक्रोब्रेकियम रोजनबर्गी* काफी अनुकूल है। एकल पालन पद्धति के अंतर्गत *मैक्रोब्रेकियम रोजनबर्गी* का पालन अधिक लाभदायक है। मत्स्य प्रजातियों का अनुपात *कतला कतला* 25%, *लेबियो रोहिता* 30% और *सिरहिनस म्रिगाला* 45% हो सकता है। मिश्रित पालन हेतु *सिरहिनस म्रिगाला* के स्थान पर *मैक्रोब्रेकियम रोजनबर्गी* को संग्रहित किया जा सकता है। कार्प मछलियों के पालन से 4000-5000 कि.ग्रा./हे./वर्ष की उपज प्राप्त हो सकती है। कार्प एवं झींगों के मिश्रित पालन में 2000-2500 कि.ग्रा./हे./वर्ष की कार्प मछलियों की उपज तथा 500-800 कि.ग्रा./हे./वर्ष की झींगा उपज भी प्राप्त हो सकती है। केवल झींगों के पालन से 4 महीनों की पालन अवधि में 1300 कि.ग्रा./हे. की उपज प्राप्त की जा सकती है। केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान ने बिहार के मुजफ्फरपुर और समस्तीपुर जिलों के मनिका कांति तथा मुक्तापुर चाप झीलों में 0.1 हेक्टर क्षेत्र से 6 महीनों की अवधि में 400 कि.ग्रा. भारतीय मेजर कार्प मछलियों की उपज (कतला, रोहू, मृगल) प्राप्त किया है।

खरपतवार प्रबन्धन

आर्द्र क्षेत्रों में खरपतवारों का भरा रहना मात्स्यिकी विकास के लिए एक बड़ी समस्या है, अतः इसका समाधान करना आवश्यक है। तैरने वाले स्थूल पादपों को हाथों से निकाल दिया जाना चाहिए। कुछ विशेष सुरक्षित स्थानों में इनका विकास किया जाना चाहिए। जलमग्न पादपों से कुछ पारिस्थितिक लाभ होता है। अतः इन्हें कुछ चयनित स्थानों पर रहने दिया जाना चाहिए।

आजीविका के मुद्दे

आजीविका किसी परिवार के सदस्यों द्वारा किये जाने वाले कार्य हैं, इन आर्द्र क्षेत्र के मामले में मत्स्यन, कृषि, श्रम, छोटे व्यापार आदि हैं । इन कार्यों में से एक या दो आजीविका के मुख्य साधन होते हैं जबकि शेष कार्य साधनों की बढ़ोत्तरी के लिए होते हैं। बाढ़कृत आर्द्र क्षेत्रों में आजीविका का मुख्य साधन है मत्स्यन कार्य, जैसे मछली पकड़ना, जाल बुनना, मछली विक्रय करना, नाव बनाना आदि। अतः मछुआरों को इन सभी कार्यों में संलग्न रहना हैं। इन पहलूओं को भी बाढ़कृत आर्द्र प्रबन्धन योजना बनाते समय ध्यान मे रखना आवश्यक है।

***

जैव मत्स्य पालन की भूमिका

डी. नाथ, पूर्व प्रधान वैज्ञानिक
केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर

भूमिका

भारत, चीन तथा कई अन्य देशों में मत्स्य पालन सदियों से प्रचलित है, परन्तु इन देशों में प्रति इकाई मत्स्य उत्पादन काफी कम रही है क्योंकि तालाबों की मिट्टी तथा जलीय गुणवत्ता पर आवश्यक ध्यान नहीं दिया गया था। इस समस्या के समाधान के लिए वैज्ञानिक प्रयोग के परिणामस्वरूप प्रति इकाई जलक्षेत्र की मत्स्य उत्पादन में काफी वृद्धि हुई तथा कई तकनीकी प्रणालियों का विकास किया गया जैसे मिश्रित मत्स्य पालन, गहन मत्स्य पालन, एकीकृत मत्स्य पालन आदि । यद्यपि नयी तकनीकी प्रणालियों से उत्पादन तथा आर्थिक लाभ में काफी वृद्धि हुई परन्तु नई समस्याऐं उभरने लगे जैसे मछलियों में कीटनाशक, भारी धातुओं, प्रतिजैविक या अन्य सिंथेटिक पदार्थों का पाया जाना, जो मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। अतः पूरे विश्व के वैज्ञानिक अब ऐसे जैव-कृषि या जैव मत्स्य पालन प्रणाली के विकास में जुटे हुए हैं जिसके तहत कीटनाशक, भारी धातुओं व अन्य रसायनों से मुक्त फसल व मछलियों का उत्पादन हो सके।

कई देशों के कृषि क्षेत्र में जैव उत्पादन प्रणाली की महत्ता बढ़ रही है। कई विकसित देशों में खाद्य उत्पादन का एक सार्थक भाग (आस्ट्रेलिया में 10%, स्विटजरलैण्ड में 7.8%) तथा कई अन्य देशों में (संयुक्त राज्य अमेरीका, फ्रांस, जापान, सिंगापुर) जैव कृषि का विकास दर 20% से भी अधिक है। कुछ विकासशील देशों (मिश्र) में जैव उत्पादों की घरेलू मांग बहुत कम है तथा कुछ देश अपने जैव कृषि उत्पादों (मैक्सीकन कॉफी, युगान्डा कॉटन) का निर्यात करते हैं। विश्व भर में जैव खाद्य व रेशा उत्पादों की बढ़ती मांग से कृषकों तथा व्यापारियों के लिए नए अवसर उत्पन्न हुए हैं। कई वर्षों तक निजी क्षेत्र के व्यवसायियों ने बड़ी सफलता के साथ जैव उत्पादों की संकल्पना कर इसकी मांग उत्पन्न की है।

विश्व खाद्य सम्मेलन कार्य योजना में जैव कृषि हेतु निवेश तकनीकियाँ, पालन प्रणालियाँ व अन्य सतत पद्धतियों के महत्व को पहचाना गया ताकि पर्यावरणीय

अपकर्ष को रोकते हुए कृषि क्षेत्र को लाभदायक एवं खेती के लिए आवश्यक वित्तीय संसाधनों को उत्पन्न किया जा सके।

जैव कृषि की परिभाषा

जैव शब्द उपभोक्ताओं को यह इंगित करता है कि उत्पाद विशेष उत्पादन विधि द्वारा उत्पन्न की गयी है। अतः जैव शब्द उत्पाद से अधिक उत्पादन प्रक्रिया को प्रस्तुत करती है। अतः जैव पालन प्रणाली द्वारा उत्पादित मछलियाँ भी अन्य प्रणालियों से उत्पादित मछलियों की तरह ही होती हैं।

कृषि को सतत बनाये रखने के विभिन्न प्रयासों में जैव कृषि भी एक प्रयास है। विभिन्न नियमों व प्रमाणीकरण कार्यक्रमों के अनुसार जैविक कृषि की यह विशेषता है कि 1) इसमें सभी प्रकार के सिंथेटिक निवेशों की मनाही है एवं 2) मृदा की गुणवत्ता बनाए रखने हेतु बारी-बारी से फसलों में बदलाव की आवश्यकता है।

जैव उत्पादन प्रणाली का मौलिक नियम है सिन्थेटिक निवेशों का निषेध तथा प्राकृतिक निवशों की स्वीकृति। मानव स्वास्थ्य या पर्यावरण के लिए हानिकारक प्राकृतिक निवेशों को भी निषेध किया जाता है तथा कुछ सिन्थेटिक निवेशों को भी स्वीकृति मिली है जो जैव खेती के अनुरूप है। कई विकासशील देशों के किसान सिन्थेटिक निवेशों का उपयोग नहीं करते हैं, केवल इस तथ्य से इसे जैव उत्पादन की श्रेणी में रखा नही जा सकता।

उपलब्ध अवसर एवं इनमें अवरोध

जैविक उत्पादो के निर्यात से विकासशील देशों में कई अवसर उत्पन्न हुए हैं। उपभोक्ता स्थानीय रूप से उत्पादित जैविक आहार को प्राथमिकता देते हैं, परन्तु वर्षभर कई प्रकार की उपभोज्य जैव उत्पादों का अपनी भौगोलिक सीमाओं में ही उपलब्ध कराना किसी भी देश के लिए कठिन है। अतः कई विकासशील देश जैव उत्पादों को बड़ी सफलता से निर्यात कर रहे हैं। जैव उत्पादों के लिए प्रायः उच्च मूल्य प्राप्त होते हैं जो अन्य तकनीकों से उत्पादित वस्तुओं की तुलना में 20-30 प्रतिशत अधिक होती है। जैव उत्पादों से प्राप्त अतिरिक्त आय से स्थानीय आहार

सुरक्षा में वृद्धि होती है। विकासशील देशों के व्यवसायी विकसित देशों में निर्यात करने पर अधिक ध्यान देते हैं, उन्हें घरेलू बाजारों पर भी ध्यान देना चाहिए। चीन में कीटनाशकों एवं उर्वरकों के बिना उपजाई गयी जैव खाद्य पदार्थों की मांग बढ़ रही है। चीन में निर्यात के लिए भी जैव खाद्य-पदार्थों का उत्पादन किया जाता है। जैविक खेती की समस्या यह है कि इस लाभदायक वृत्ति में आना आसान नहीं है। जैविक खेती प्रारंभ करने के दो-तीन वर्षों तक किसानों को विकसित देशों के बाजारों की पहुँच नहीं हो पाती क्योंकि ये विकसित देश तब तक भूमि एवं पशुधन को जैविक नहीं मानते जब तक इनमें से रसायनिक अवशेष पूरी तरह निकल नही जाते हैं।

जो किसान अपने उत्पादों को विकसित देशों में बेचना चाहते हैं उन्हें अपने उत्पादों का प्रमाणीकरण करवाना पड़ता है और इस प्रकार की सेवायें काफी महंगी होती है।

जैव उत्पादों को घरेलू या विदेशी बाजारों में विक्रय के लिए आवश्यक सूचनाऐं उपलब्ध नही हैं। इस संदर्भ में बाजारों का सर्वेक्षण या उत्पादन से संबंधित क्रमिक आँकड़ें, लोगों की रूचि व प्रवृत्ति आदि सूचनाओं का अभाव है।

जब किसान सामान्य पद्धति से जैव उत्पादन प्रणाली की ओर मुड़ते हैं तो उन्हें उपज में कुछ हानि होती है। इस संक्रमण काल की कुछ विशिष्ट समस्यायें हैं जिनका समाधान आवश्यक है। जैव उत्पादन प्रणाली में परंपरागत प्रणालियों की तुलना में अधिक मजदूरों की आवश्यकता होती है, परन्तु भारत में मजदूरों की समस्या नहीं है। इस प्रकार की खेती से ग्रामीण क्षेत्रों की बेरोजगारी दूर हो सकती है।

पर्यावरणीय प्रभाव

जैव उत्पादन प्रणाली का मुख्य उद्देश्य है परितंत्र को सतत बनाये रखना। जैविक खाद के उपयोग से मृदा की गुणवत्ता में वृद्धि होती है जिससे मृदा सूक्ष्म जीवियों का तेज विकास होता है। यदि जैविक खेती को उचित रूप से किया जाय तो इससे जल प्रदूषण में कमी एवं प्रक्षेत्र में जल एवं मृदा का संरक्षण होता है।

जैविक मत्स्य उत्पादन में मत्स्यपालक उत्पादन में वृद्धि के लिए खली, चावल की भूसी, कुक्कुट खाद, गोबर आदि को खाद व उर्वरक के रूप में उपयोग करते हैं। अकार्बनिक नाइट्रोजन एवं फास्फेट का उपयोग नहीं होता है बल्कि इनके स्थान पर प्राकृतिक एवं जैविक उर्वरकों का उपयोग होता है।

जैविक मत्स्य पालन के साथ पशुधन पालन का एकीकरण काफी लाभदायक प्रमाणित हो सकता है जिससे किसानों को मांस, अण्डे, दुग्ध उत्पादों के रूप में अतिरिक्त आय हो सकती है।

नीति निर्धारण

जैव उत्पादन प्रणाली से उत्पन्न पर्यावरणीय एवं आर्थिक लाभ ने कई देशों का ध्यान आकर्षित किया है, परन्तु कुछ ही देशों ने इस क्षेत्र के विकास के लिए नीतियों को निर्धारित किया। इस दिशा में निजी क्षेत्र प्रमुख रूप से गैर-सरकारी संगठनों ने काफी प्रगति की है।

कई देशों में किसान एवं उपभोक्ता स्वसंगठित उत्पादन संस्थाओं एवं स्वतंत्र प्रमाणकर्ताओं पर निर्भर हैं। सौ से अधिक देशों में आई.एफ.ओ.ए.एम. (IFOAM) के 650 व्यक्तिगत एवं संस्थागत सदस्य है, इनमें से 75 प्रतिशत विकासशील देशों में है। निजी प्रमाणकर्ताओं के नेटवर्क के विस्तार की आवश्यकता है क्योंकि अब भी अनेक विकासशील देशों में प्रमाणन संगठनों की कमी है।

प्रत्यक्ष सहयोग

विकसित यूरोपीय देश पर्यावरण सुरक्षा एवं छोटे पारिवारिक कृषि प्रक्षेत्रों की रक्षा हेतु विभिन्न स्तरों पर जैव उत्पादन को अनेक रियायत देते हैं। जैव उत्पादों को उच्च मूल्यों पर बेचने के लिए इन उत्पादों का जैविक होना, प्रमाणित करना एवं उपभोक्ताओं को विश्वस्त करना पड़ता है। चूंकि जैव उत्पादों एवं अन्य तरीकों से उत्पादन किये गये उत्पादों के बीच अंतर को आसानी से समझा नहीं जा सकता अतः प्रमाणकर्ताओं पर आधारित होना पड़ता है। अतः जैव उत्पादों के मानकों का निर्धारण एवं गलतियों के लिए दंड का प्रावधान किया जाना चाहिए।

भारत में जैविक मत्स्य पालन

भारत में जैव मत्स्य पालन काफी उपयोगी हो सकता है। हमारे देश में कई जल निकाय (तालाब व टैंक) हैं एवं अधिकतर मत्स्य पालक गरीब हैं। गहन एवं अर्द्धगहन मत्स्य पालन के लिए बड़ी लागत, प्रशिक्षित कर्मी एवं कीमती उपकरणों की आवश्यकता होती है, जबकि जैव मत्स्य पालन के अंतर्गत कार्प पालन में सस्ती सामग्री जैसे सरसों की खली व चावल की भूसी (1 : 1 अनुपात) को आहार के रूप में उपयोग किया जाता है। तालाबों की उर्वरकता के लिए गोबर (10000-20000 कि.ग्रा./हे./वर्ष) या कुक्कुट खाद (2,000-3,000कि.ग्रा./हे./वर्ष) को साप्ताहिक किस्तों में दिया जा सकता है। अपतृण मछलियों के उन्मूलन हेतु महुए की खली (2,500 कि.ग्रा./हे./मी.) का उपयोग किया जाता है। तालाब की तैयारी के दौरान चूने (300-500कि.ग्रा./हे.) का उपयोग किया जाता है। एकीकृत मत्स्य पालन में बत्तख या सूअर पालन को मत्स्य पालन के साथ एकीकृत किया जा सकता है। संस्थान द्वारा किए गए अध्ययन से स्पष्ट होता है कि 70-100 बत्तख/हेक्टेयर के पालन से मत्स्य तालाब में खाद की आपूर्ति होती है जिससे मत्स्य उत्पादन में काफी वृद्धि हो सकती है।

***

पेन व पिंजरों में मत्स्य पालन

जी. के. विन्सी, प्रधान वैज्ञानिक
केन्द्रीय अंत़र्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर

भूमिका

पेन व पिंजरा दोनों ही ऐसे घेरे हैं जिनमें जीवजातों को एक निर्दिष्ट स्थान पर प्रतिबंधित किया जा सके पर जल प्रवेश व निकासी में कोई अवरोध न हो। दोनों प्रकार की संरचनाओं में कुछ विशिष्ट भिन्नताऐं हैं। पिंजरा एक ऐसी संरचना है जो चारो ओर से घिरा हुआ होता है, जबकि पेन संरचना में निचली सतह जल संसाधन की सतह की ओर खुली होती है। पिछले कुछ वर्षों से पिंजरा पालन विधि पूरे विश्व में प्रचलित हो रही है। पिंजरों को समान्यत: निचली सतह से या फिर किनारों से बाँधकर स्थापित किया जाता है। पेन पालन विधि जापान देश में शताब्दी के दूसरे शतक में विकसित की गई। इसके बाद इस विधि में कोई विशेष परिवर्तन नही हुए केवल बाँस के पट्टों से बने मेश (mesh) के स्थान पर नॉयलान या पॉलीथीलीन जाल का उपयोग होने लगा। पेन की तुलना में पिंजरों को अधिक अपनाया जाता है क्योंकि ये काफी छोटे एवं उपयोग करने में आसान होते हैं। पिंजरों का उपयोग न केवल बड़ी मछलियों के उत्पादन के लिए किया जा सकता है बल्कि बीज उत्पादन एवं प्रजनन के लिए भी किया जा सकता है। पेन पालन प्रणाली अधिकतर स्थिर जल निकायों में ही अपनायी जाती है जबकि पिंजरों को नदीय प्रवाह एवं झरनों में भी लगाया जाता है।

पेन व पिंजरा पालन प्रणाली का वर्गीकरण

पेन व पिंजरा पालन प्रणाली मोटे तौर पर तीन प्रकार की होती है जैसे- विस्तृत पालन, अर्ध-गहन पालन एवं गहन पालन। यह वर्गीकरण पूरक आहार पर निर्भर है। विस्तृत पालन प्रणाली में मछलियों को कोई पूरक आहार नही दिया जाता है। यहाँ मछलियाँ पूरी तरह से घेरे में उपलब्ध प्राकृतिक आहार पर ही निर्भर रहती हैं। अर्ध-गहन प्रणाली में प्राकृतिक आहार के साथ स्थानीय रूप से उपलब्ध पौधों

या कृषि सह-उत्पादों से बना कम प्रोटीनवाला (>10%) पूरक आहार दिया जाता है। गहन पालन प्रणाली में मछलियों को 20% से अधिक प्रोटीनवाला पूरक आहार दिया जाता है। विस्तृत एवं अर्ध-गहन पालन प्रणालियाँ प्लवकभोजी, अपरद्दभोजी या नितल जीवजातों को खानेवाली प्रजातियों के लिए ही उपयुक्त हैं। आहार में अधिक प्रोटीन मांग करनेवाली प्रजातियों का पालन गहन पालन प्रणाली के अंतर्गत किया जाना चाहिए। पेन के घेरों में सामान्यतः गहन पालन प्रणाली नही अपनायी जाती है क्योंकि इस प्रणाली में मछलियों की पहुँच नितल जीवजातों एवं अपरद्द पदार्थों तक होती है। इसके अलावा उच्च मूल्यवाली प्रजातियों के उत्पादन में ही गहन पालन प्रणाली को अपनाया जाता है क्योंकि आहार पर कुल परिचालन लागत का 40-60% खर्च होता है।

पेन व पिंजरा पालन प्रणाली से लाभ

यद्यपि प्रारम्भ में पेन व पिंजरों के निर्माण में अधिक लागत आती है परन्तु इनका परिचालन लागत कम होता है। पेन व पिंजरा पालन प्रणाली से निम्नलिखित लाभ होते हैं-

1. भूमि की आवश्यकता नही होती।
2. जल संसाधनों का बेहतर उपयोग।
3. मत्स्य उत्पादन में तेजी।
4. विकास हेतु पूरक आहार का उचित उपयोग।
5. परभक्षी एवं स्पर्धा करनेवाली प्रजातियों पर पूर्ण नियंत्रण।
6. नित्य किए जानेवाले पर्यवेक्षण से बेहतर प्रबंधन एवं मत्स्य रोग व अन्य समस्याओं की तुरन्त पहचान।
7. मछलियों को अन्य कार्यों के लिए छूने या पकड़ने की आवश्यकता न होने के कारण मृत्यु दर में कमी।
8. उपज प्राप्ति सरल एवं इच्छानुसार।

मलेशिया व सिंगापुर में प्लवकभोजी प्रजातियों के पालन एवं उपज प्राप्ति से सुपोषी जल स्वच्छ होने का उदाहरण है।

पेन व पिंजरा पालन प्रणाली से हानि

घेरों की स्थापना से पर्यावरण पर कुछ दुष्प्रभाव भी होते हैं। पिंजरों में पूरक आहार एवं उर्वरक आदि के उपयोग से मत्स्य पालन करने से जल निकाय में सुपोषण में वृद्धि हो जाती है। जब जल निकाय की धारण क्षमता की परवाह किए बिना बड़ी संख्या में पेन एवं पिंजरों को स्थापित कर दिया जाता है तो जल में घुलित आक्सीजन कम हो कर मछलियों की मृत्यु हो जाती है। इस प्रणाली से अन्य हानियाँ निम्नलिखित हैं :—

1. खराब मौसम का तुरन्त असर।
2. पिंजरों में जल की आवा-जाही पर्याप्त नही होती।
3. दुर्गन्ध तेजी से फैलती है, अतः नित्य सफाई की आवश्यकता।
4. पूरी तरह कृत्रिम आहार पर निर्भरता एवं पिंजरों व पेन के दिवारों से आहार का निकल जाना।
5. बाहर से छोटी मछलियाँ घेरों में घुसकर भोजन के लिए प्रतिस्पर्धा एवं बीमारियाँ फैला सकती हैं।
6. मछलियों की चोरी आसानी से हो सकती।
7. मजदूरी पर अधिक खर्च।
8. जल निकाय में अन्य मछलियों के प्रजनन स्थल नष्ट हो जाते हैं।

यह आम धारणा होती है कि घेरों की स्थापना से नौसंचालन में अवरोध उत्पन्न हो जाते हैं। आर्द्र क्षेत्रों में घेरों के निर्माण हेतु स्थान के चुनाव के दौरान इस समस्या पर ध्यान दिया जा सकता है। दक्षिण एशियाई देशों में सामान्यतः जलाशयों में नौसंचालन नही होता है।

पेन व पिंजरों का निर्माण

पेन एवं पिंजरों के निर्माण से पूर्व निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है :—

स्थान का चयन

किसी भी पालन प्रणाली में स्थान का चयन काफी महत्वपूर्ण है। पालन प्रणाली की सफलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि पालन कहाँ किया गया। घेरों के निर्माण या स्थापना से पूर्व आस पास की भू-संरचना एवं जल ग्रहण क्षेत्र की प्रवृत्ति आदि का ईंजीनियरिंग सर्वेक्षण करवाया जाना चाहिए। यदि पेन में झींगों का पालन

किया ज़ाना हो तो इसकी निचली सतह की मृदा बलुई दुमट या बलुई मृत्तिका होना आवश्यक है। पेन स्थापना का स्थान उथली एवं इसकी न्यूनतम गहराई 1-2 मी. होनी चाहिए। कम गहराई से पेन क्षेत्र साफ-सुथरा, उपजाऊ होता है एवं प्रबन्धन में भी सुविधा होती है। पिंजरा निर्माण में निचली सतह की कोई विशेषता नही होती क्योंकि पिंजरा चारों ओर से घिरा एवं तैरनेवाला होता है। किनारों पर निर्मित पेन में प्रबन्धन एवं उपज प्राप्ति आसान होती है। चयनित स्थान प्रदूषण मुक्त होना चाहिए। आस-पास की सामाजिक अवस्था पर भी ध्यान देना आवश्यक है ताकि मछलियों की चोरी आदि न हो।

आवश्यक सामग्री

निर्माण के लिए मुख्य रूप से 1) फ्रेम 2) स्क्रीन और 3) जाल आवश्यक है। स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री सस्ती होती है। फ्रेम बनाने के लिए बाँस का उपयोग आर्थिक रूप से लाभदायक है, विशेषकर असम, प. बंगाल और बिहार में।

स्क्रीन के लिए आयरन मेश का उपयोग किया जाता है।अगर जैव-कारकों पर प्रतिकूल प्रभाव नही पड़ता हैं तो सिंथेटिक जालों का भी उपयोग किया जा सकता है।

संग्रहित की जानेवाली प्रजातियों के आमाप के अनुसार स्क्रीन पर नेट लाइनिंग की आवश्यकता होती है। यह नेट बाहर से जीवजातों के प्रवेश को रोकती है।

प्रजातियों का अनुपात

प्राकृतिक रूप से उपलब्ध आहार, बीजों की उपलब्धता, जल निकाय की गहराई आदि के अनुसार प्रजातियों का अनुपात निर्धारित किया जाता है। स्थापित एवं मान्य अनुपात है- ऊपरी सतह पर भोजन लेनेवाली प्रजातियाँ 35% (*कतला कतला* 20%, सिल्वर कार्प 15%); जल के मध्य भाग में भोजन लेनेवाली प्रजातियाँ 20% (रोहु, *लेबियो रोहिता*) तथा निचली सतह पर भोजन लेनेवाली प्रजातियाँ 45% (मृगल, *सिरहीनस मृगाला*)। मिश्रित पालन में म्रिगल के स्थान पर झींगों को लिया जा सकता है। मूल्यवान प्रजातियों का एकल पालन पिंजरों में किया जाता है।

संग्रहण दर एवं आमाप

कार्प पालन में बड़ी अंगुलिकाओं (100-200 मि.मी.) को बेहतर अतिजीविता दर हेतु संग्रहित किया जाता है। झींगों का संग्रहण आमाप 65-75 मि.मी. के बीच होता है। घेरे की धारण क्षमता के अनुरूप संग्रहण दर निर्धारित किया जाता है।

पालन अवधि

यद्यपि घेरों में मत्स्य पालन वर्षभर किया जा सकता है पर मानसून एवं ग्रीष्मकाल में पालन न करना ही बेहतर है। इस प्रकार की पालन प्रणाली से वर्ष में दो उपज प्राप्त करना काफी आसान है।

पूरक आहार

विस्तृत मत्स्य पालन में पूरक आहार का उपयोग नहीं होता, यदि अर्ध-गहन प्रणाली अपनायी जाती तो सामान्य आहार दिया जाता है। झींगा पालन में उच्च प्रोटीनयुक्त आहार की आवश्यकता होती है। प्राकृतिक आहार की उपलब्धता के आधार पर झींगों को प्रतिदिन शाम के समय इनकी शारीरिक भार का 2-5% की दर से पूरक आहार दिया जाता है। प्रोटीनयुक्त कोकल फ्लेश एवं फिश मील सर्वमान्य पूरक आहार है। आहार को थालियों/ ट्रे में देना लाभदायक है। पिंजरा पालन में हमेशा ही उच्च प्रोटीनयुक्त पूरक आहार की आवश्यकता होती है।

निष्कर्ष

पेन व पिंजरा पालन सावधानीपूर्वक किया जाए तो काफी लाभदायक है। इसमें मुख्य समस्या यह है कि जल निकाय की सरोवरीय एवं जैविक अवस्था का ज्ञान न होना, घेरों में पालन तकनीक की जानकारी न होना आदि है। किसी सफल तकनीक को भी बिना समझे अपनाये जाने पर लाभ से अधिक हानि होती है।

***

मात्स्यिकी तालाबों की मृदा एवं जल की गुणवत्ता एवं इनका उर्वरीकरण

ए. के. दास, वरिष्ठ वैज्ञानिक
केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर

भूमिका

देश में विभिन्न अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी संसाधनों में तालाबों के अलग-अलग आकार एवं प्रकार पाये जाते हैं। कृषि क्षेत्र से घिरे जल निकायों की तुलना में ऐसे तालाबों की प्रकृति साधारण होती है। आर्द्रक्षेत्र के तरह इनमें पाये जाने वाले जैव समुदाय में विविधता नही होती बल्कि गहन एवं अर्द्ध-गहन जलकृषि के कारण विविधता में कमी पाई जाती है जो ग्रामीण क्षेत्रों के मछुआरों के जीवनयापन में सहायक होते हैं। यहाँ तक कि कुछ आर्द्रक्षेत्र का प्रबंधन तालाब के पारिस्थितिकी प्रणाली के आधार पर किया जाता है जिससे उसके संभावना को संपूर्ण प्रकार से उपयोग किया जा सके। इन परितंत्रों में अधिकतर वर्तमान में गाद, एंथ्रोपोजेनिक लोड तथा जल उपयोग के लिये सामाजिक कलह आदि समस्याओं से जूझ रहे हैं । अतः इस समस्या का निराकरण आवश्यक है। इसके साथ-साथ हाइड्रोफाइट्स में उपस्थित अत्यधिक ग्रसन से समस्या और भी गंभीर होती जा रही है। इसलिये एक परिपूर्ण एवं वैज्ञानिक प्रबंधन दृष्टिकोण की आवश्यकता है जिससे ऐसे परितंत्र के संभावनाओं को प्राप्त किया जा सके। बेसिन अपरद एवं जल संबंधित विशेषताओं का विश्लेषण आवश्यक है जिससे प्रतिपालित विकास के लिये प्रबंधन प्रणाली का निर्माण किया जा सके।

जल निकायों की मृदा तालाब की उत्पादकता में महत्वपूण भूमिका निभाती है । यह मृदा नितलस्थ सूक्ष्म जीवियों को आश्रय एवं आहार प्रदान करती है साथ ही कार्बनिक पदार्थों की खनिजीकरण में सहायक एवं पोषक तत्वों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है ।

तालाब की मृदा स्थलीय मृदा से अनेक मामलों में अलग होती है

1. तालाब की मृदा कई प्रकार की मृदाओं का मिश्रण होती है ।
2. तालाब की मृदा में गैसीय अवस्था नहीं होती क्योंकि इसमें स्थायी तौर पर जल भरा रहता है ।

3. तालाब की मृदा में निरंतर परिवर्तन होता रहता है क्योंकि जलग्रहण क्षेत्र से इसमें घुले पोषक तत्व एवं अन्य मृदा के कण आते रहते है ।

जल निकाय जिस मौलिक मृदा पर बनती है, इस मृदा का प्रभाव तालाब की उत्पादकता पर कुछ वर्षों तक ही रहता है । समय के साथ तालाब की सतह पर पौधों एवं अन्य जीवजातों के अपघटन से इस मृदा के अभिलक्षणों में काफी परिवर्तन हो जाता है । अतः सामान्य रुप से देखा जाय तो किसी भी तालाब के जल का भौतिक व रसायनिक गुण उस तालाब के मृदा का दर्पण होता है जैसे अम्लीय मृदा वाले तालाब का जल अम्लीय तथा क्षारीय मृदा वाले तालाब का जल क्षारीय होता है। तालाब की निचली सतह एक प्रयोगशाला जैसी होती है जहाँ कार्बनिक एवं खनिज पदार्थों से रसायनिक व जैव-रसायनिक पद्धतियों द्वारा पोषक तत्वों का उत्पादन होकर तालाब के जल में आपूर्ति होती है ।

तालाब की मृदा एवं इसकी उत्पादकता

तालाब की उत्पादकता प्रत्यक्ष रुप से मृदा में उपलब्ध मुख्य पोषक तत्व नाइट्रोजन, फासफोरस, कार्बनिक कार्बन, पोटाशियम, कैलशियम और मैगनिशियम पर आधारित होती है। तालाब की उत्पादकता में सूक्ष्म पोषक तत्व एवं लेश तत्वों का भी योगदान होता है। स्थूल व सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता मृदा के पी.एच. पर निर्भर करता है ।

पी.एच.

मृदा का पी.एच. एक महत्वपूर्ण कारक है जो इसकी अम्लीय या क्षारीय अभिलक्षण को इंगित करती है। तालाब की उत्पादकता को प्रभावित करनेवाले कारकों में यह एक महत्वपूर्ण कारक है। मृदा का पी.एच. इसकी कैलशियम व मैगनिशयिम कार्बेनेट, कार्बन डाइअक्साइड तथा कार्बनिक पदार्थों पर निर्भर होता है। यदि पी.एच. का स्तर 7.0 हो तो इसे न्यूट्रल, इससे अधिक हो तो क्षारीय एवं कम हो तो अम्लीय कहा जाता है । यह देखा गया है कि मत्स्य उत्पादन के लिए पी.एच. का न्यूट्रल होना श्रेयस्कर है जबकि 5.5 से 6.5 पी.एच. होने पर औसत तथा 6.8 से 7.2 पी.एच.उच्च उत्पादक माना जाता है ।

नाइट्रोजन

मृदा में नाइट्रोजन की मौजूदगी कार्बनिक रुप में होती है किन्तु इसका सम्पूर्ण रुप

से उपयोग नहीं होता है। इसका कुछ भाग ही आसान एवं प्रत्यक्ष रुप से पौधों द्वारा उपयोग किया जाता है जिसे उपलब्ध नाइट्रोजन कहा जाता है ।

यह देखा गया है कि उपलब्ध नाइट्रोजन 25 मि.ग्रा./100 ग्रा. मृदा होने पर मत्स्य उत्पादन कम होती है, 25 मि.ग्रा. से 50 मि.ग्रा. होने पर औसत उत्पादन तथा 50 से 75 मि.ग्रा. होने पर अनुकूल उत्पादन होता है ।

फास्फोरस

मृदा में इस महत्वपूर्ण पोषक तत्व की उपलब्धता मृदा के पी.एच. पर निर्भर करता है। अम्लीय मृदा में फास्फोरस की मात्रा आयरन, अल्यूमिनियम और मैंगनीज फास्फेट जैसे निश्चित रहता है और क्षारीय मृदा में यह कैलशियम फास्फेट की तरह स्थिर रहता है । मृदा का पी.एच.न्युट्रल स्तर पर होने से फास्फेट fixation न्यूनतम सीमा में होता है। यदि फास्फेट का स्तर 3 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्रा. मृदा हो तो तालाब को अनुत्पादक, 3-6 मि.ग्रा. हो तो औसत तथा 6 से अधिक हो तो अच्छी उत्पादन क्षमता वाली तालाब माना जाता है ।

पोटाशियम

कृषि उत्पादों में पोटाशियम एक प्रमुख पोषक तत्व है। मत्स्य तालाबों में सामान्यतः पोटाशियम पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। जिन तालाबों की मृदा बलुई होती है उन तालाबों में पोटाशियम की कमी होती है परन्तु पोटाशियम उर्वरक देने पर यह कमी दूर हो जाती है ।

जैविक कार्बन

तालाब की मृदा में कार्बनिक यौगिकों का काफी महत्व है क्योंकि इनमें उच्च मात्रा में कार्बोहाइड्रेट तत्व होते हैं जो बैक्टीरिया के लिए आवश्यक है। अधिक जैविक कार्बन वाली मिट्टी अधिक उपजाऊ होती है (मोयले, 1946; बैनर्जी, 1967)। मृदा में बैक्टीरिया की अभिक्रियाएँ केवल कार्बन पर निर्भर न होकर C:N अनुपात पर ही निर्भर करता है। जब C:N अनुपात 10 से नीचे होता है तो बैक्टीरिया की अभिक्रिया निम्न स्तर पर तथा 20:1 अनुपात होने पर उच्च स्तर पर होता है। मत्स्य तालाबों में मत्स्य उत्पादन कम होता है जब कार्बनिक कार्बन 0.5 प्रतिशत से कम होता है, 0.5 से 1.0 प्रतिशत होने पर औसत उत्पादन तथा 1.0 से 2.5 प्रतिशत होने पर उच्च उत्पादन प्राप्त होता है। इसी प्रकार C:N अनुपात 5 से नीचे होने पर निम्न उत्पादन एवं 10 से 15 होने पर उच्च उत्पादन सूचित करता है ।

कैलशियम एवं मैंगनिशियम

कैलशियम और मैंगनिशियम मत्स्य पालन में काफी उपयोगी है, इससे मृदा का पी.एच. अधिकतम सीमा तक नियंत्रित किया जा सकता है । ये दोनों तत्व मत्स्य एवं मत्स्य आहार जीवों के लिए ही नहीं बल्कि मृदा के सूक्ष्म एवं स्थूल वनस्पतियों के लिए भी आवश्यक है ।

सूक्ष्मपोषक एवं लेश तत्व

मत्स्य उत्पादकता में लेश तत्व जैसे मैंगनीज, कॉपर, आयरन, जिंक, कोबाल्ट आदि महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आयरन और मैंगनीज लेश तत्वों को छोड़कर शेष तत्व तालाब की मृदा में बहुत कम ही पाये जाते है तथा वनस्पतियों के लिए इनकी उपलब्धता भी काफी कम होती है। बलुई, कार्बनिक तथा उच्च क्षारीय या अम्लीय मृदाओं में सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता एक समस्या है। चूँकि इन सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यकता काफी कम मात्रा में होती है, इनकी हल्की सी अधिकता भी पौधों एवं जीवजातों के लिए घातक हो सकती है। सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता मृदा के पी.एच. पर निर्भर करता है जिसका अधिकतम स्तर 6.5-7.5 होता है ।

तालाब का जल एवं जलीय उत्पादकता

जलीय गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण भौतिक व रासायनिक प्राचल है - तापमान, पारदर्शिता, पी .एच., घुलित आक्सीजन, मुक्त कार्बनडाइअक्साइड, कुल क्षारीयता और घुले पोषक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाशियम, कैलशियम,मैगनिशियम एवं सिलिका आदि ।

तापमान

तालाब में मत्स्य उत्पादन मत्स्य पालन अवधि के दौरान जल के तापमान पर निर्भर करता है जो वर्ष दर वर्ष परिवर्तित होता रहता है। यदि तापमान 10^0 से.ग्रे.बढ़ जाता है तो उपापचयी क्रिया लगभग दुगनी हो जाती है। अतः मत्स्य विकास जल के तापमान पर निर्भर करता है। जल का तापमान बढ़ने पर सभी उपापचयी एवं शारीरिक क्रियाएँ जैसे आहार लेना, अंडजनन, मछलियों की हरकतें, जलीय जीवजातों का वितरण आदि परिवर्तित हो जाता है। जल का तापमान मृदा एवं जल के रासायनिक एवं सूक्ष्म-जैविक परिवर्तनों को धीमी कर देता है तथा घुले हुए गैस की मात्रा को प्रभावित करता है। सामान्यतः यह देखा गया है कि कार्प मछलियों का विकास 23^0-30^0 से.ग्रे. तापमान में अच्छा होता है (नाथ एवं मंडल, 2002) ।

भारत में मत्स्य पालन के लिए 39-41^0 से.ग्रे. का तापमान अत्यधिक घातक होता है।

पारदर्शिता

पारदर्शिता तालाब के जल में सूर्य की किरणे पहुँचने का मापदंड है। यह पारदर्शिता जल में तैरते हुए कणों के परिमाण के अनुरुप होती है। मत्स्य पालन के लिए उच्च पारदर्शिता या उच्च आविलता दोनों ही अनुकूल नहीं है। इन दोनों ही दशाओं में मत्स्य जैविक आहार की कमी होती है । अच्छी उत्पादकता वाले तालाबों की पारदर्शिता 20-50 से.मी. होती है (नाथ एवं मंडल, 2002)। यदि तालाब में गाद या चिकनी मिट्टी के कण के कारण आविलता हो तो यह अनुत्पादक होती है परन्तु यह आविलता प्लवकों के कारण है तो तालाब में अच्छी उत्पादकता होती है ।

पी.एच.

तालाब की उत्पादकता को हाइड्रोजन की सांद्रता काफी प्रभावित करती है। मत्स्य उत्पादन के लिए न्युट्रल से हल्की क्षारीयता वाला जल (7.2-8.0 पी.एच.) अनुकूल होता है। मत्स्य पालन के लिए उच्च अम्लीय (5.5 पी.एच. से कम) या उच्च क्षारीय (9.5 पी.एच. से अधिक) जल अनुपयुक्त है । यदि पी.एच. का स्तर 4.0 से कम या 11.0 से अधिक हो तो मछलियाँ तालाब में जीवित नहीं रह सकती है. ।

क्षारीयता

तालाब के जल में कुल क्षारीयता कैलशियम और मैंगनिशियम में उपस्थित कार्बोनेट एवं बाइकार्बोनेट के कारण होता है। जल का कार्बोनेट, बाइकार्बोनेट तथा कार्बनडाइअक्साइड पी.एच. स्तर को स्थिर रखने में सहायक होते हैं। जब जल में कार्बनडाइआक्साइड की मात्रा अधिक हो जाती है तो कुछ कार्बोनेट बाइकार्बोनेट में परिवर्तित होकर जल का पी.एच.स्तर स्थिर रखता है। जब जल में कार्बनडाइअक्साइड की कमी होती है तो बाइकार्बोनेट के अप॰ टन से कार्बनडाइअक्साइड उत्पन्न होती है । मत्स्य उत्पादन के लिए क्षारीयता का स्तर 80 से 150 पी.पी.एम. बेहतर होता है तथा कम क्षारीयता वाले तालाब में (50 पी.पी.एम. से कम) निम्न स्तर का उत्पादन देता है।

घुली आक्सीजन

जलीय जीवजातों की श्वास क्रिया के लिए जल में घुली आक्सीजन का होना

अत्यन्त आवश्यक है। तालाब के जल में आक्सीजन वायु के विसरण, यांत्रिक विक्षोप, वायु की गति तथा पादक प्लवकों एवं शैवाल द्वारा प्रकाश-संश्लेषण के कारण घुलती है। जल में घुली आक्सीजन पौधों एवं जैविक समुदाय के उपापचयी क्रियाओं को नियमित करती है साथ ही यह जल की गुणवत्ता का सूचक भी है। तालाब के तल में मृदीय बैक्टीरिया तथा मृदीय जीवजात कार्बनिक पदार्थों के खनिजीकरण के लिए इसी आक्सीजन का उपयोग करते है। यदि घुली आक्सीजन की मात्रा अधिक तथा पी.एच. स्तर अनुकूल हो तो कार्बनिक पदार्थों का खनिजीकरण तालाब को पोषक तत्वों से भरपूर एवं उच्च उत्पादकता वाली बना देते है। तालाब में मत्स्य स्वास्थ्य के लिए 5 पी.पी.एम. घुली आक्सीजन का होना आवश्यक है ।

मुक्त कार्बडाइअक्साइड

जल में कार्बनडाइअक्साइड की उपलब्धता पौधों द्वारा प्रकाश-संश्लेषण के लिए आवश्यक है। सूर्य किरणों की उपस्थिति में कार्बनडाइअक्साइड और जल कार्बोहाइड्रेट में परिवर्तित होकर इन पौधों के हरे पत्तों में जमा हो जाता है जिससे आक्सीजन निकलता है। कार्बनडाइअक्साइड मछलियों के लिए घातक नहीं होती है, अनेक प्रजातियाँ जल में 60 पी.पी.एम. कार्बनडाइअक्साइड होने पर भी कई दिनों तक जीवित रहती है परन्तु इसके लिए जल में घुली आक्सीजन का पर्याप्त मात्रा में होना आवश्यक है (हर्ट,1944)। जब तालाब में घुली आक्सीजन की मात्रा कम हो तो सामान्यतः कार्बनडाइअक्साइड की मात्रा अधिक होती है (बॉयड, 1982)। जब जल में आक्सीजन की मात्रा कम एवं कार्बनडाइअक्साइड की मात्रा अधिक हो तो मछलियों के श्वास क्रिया पर दबाव पड़ता है। मत्स्य विकास के लिए 3 पी.पी.एम. या उससे कम मुक्त कार्बनडाइअक्साइड अनुकूल होता है। कार्बनडाइअक्साइड का उच्च स्तर अधिक दिनों तक होने पर यह अनेक मत्स्य प्रजातियों के लिये घातक है (दास एवं दास 1997)।

घुलित नाइट्रोजन

प्रोटीन के घटक के रुप में नाइट्रोजन का जलीय उत्पादकता में काफी महत्व है। जल में घुलनशील नाइट्रोजन यौगिक कार्बनिक रुप में तथा नाइट्रेट एवं अमोनियम, साल्ट के रुप में मौजूद रहते हैं । अमोनियम एवं नाइट्रेट को पौधे बड़ी आसानी से ग्रहण कर लेते है जबकि हरित शैवाल सभी प्रकार के नाइट्रोजन का उपभोग कर लेती है। मत्स्य विकास के लिए 1.0-2.5 पी.पी.एम. घुली नाइट्रोजन अनुकूल होता है ।

घुलित फास्फोरस

जलीय उत्पादकता में फास्फोरस का विशेष महत्व है। सामान्यतः मीठे जल वाले तालाबों में फास्फोरस की सांद्रता कम होती है। फास्फोरस दो तरह की होती है - अकार्बनिक एवं कार्बनिक परन्तु अकार्बनिक रुप अधिक महत्वपूर्ण है। फास्फोरस का स्तर यदि 0.05 पी.पी.एम. से कम हो तो अपर्याप्त माना जाता है जबकि 0.10 से 0.20 पी.पी.एम. मध्यम उत्पादकता वाला माना जाता है। उच्च उत्पादन के लिए फास्फेट का स्तर 0.2 से 0.6 पी.पी.एम. अनुकूल है।

प्राथमिक उत्पादकता

तालाब की प्राथमिक उत्पादकता सौर विकिरण की तीव्रता, जल की पारदर्शिता पादप प्लावकों का घनत्व तथा पोषक तत्वों का स्तर आदि पर निर्भर रहती है। यदि जल निकाय की प्राथमिक उत्पादकता अधिक हो तो सेकेन्डरी प्रोडक्शन एवं टेरटेरी प्रोडक्शन भी अधिक होती है। अतः प्राथमिक उत्पादकता मत्स्य तालाब के उपजाऊपन की महत्वपूर्ण सूचक है।

***

मत्स्य रोग व निवारण

मानस कुमार दास, प्रधान वैज्ञानिक
केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर

भूमिका

पूरे विश्व में मत्स्य पालन के दौरान मछलियों का रोगग्रस्त होना एक बड़ी समस्या है जिससे इस उद्योग पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। जलकृषि के गहन पालन में जहाँ संग्रहण दर अधिक होती है, वहाँ मछलियों में बीमारी फैलने की संभावना भी सबसे अधिक होती है। इन मछलियों में बीमारी कुछ रोगजनक कीटाणुओं जैसे विषाणु, जीवाणु, प्रोटोजोआ तथा मेटाजोन जैसे परजीवियों के कारण फैलती है । इन संक्रमण एवं ग्रसन के अलावा कुछ ऐसे पर्यावरणीय कारक भी हैं जो मछलियों में बीमारी एवं उनकी मृत्यु के लिये जिम्मेदार हैं।

मत्स्य रोग के सामान्य लक्षण

मछलियो में बीमारियों के सामान्य लक्षण हैं - बेचैनी, असामान्य तरीके से विचरण, मछलियों का कूदना, जल के ऊपरी सतह पर तैरना, हँफानी, किसी कठोर तल पर शरीर को घिसना, समूह में ना रहना, त्वचा का अति चिकना होना, त्वचा या फिन या गिल पर कोई घाव, विकास में कमी तथा बड़े पैमाने पर मछलियों की मृत्यु।

बीमारी के कारण

मछलियों में बीमारियों के कारण एवं संबद्ध कारकों को दो बड़े वर्गों में बाँटा जा सकता है :

1. पर्यावरणीय कारक
2. संक्रमण व ग्रसन संबंधी कारक

1. *पर्यावरणीय कारक*

किसी भी जीव के विकास एवं उत्तरजीविता के लिये उपयुक्त एवं स्वस्थ वातावरण की आवश्यकता होती है। इसकी कमी से होने वाली बीमारियाँ निम्नलिखित हैं -

क) *ऑक्सीजन की कमी या हाइपोक्सिया*

किसी भी जीव के लिये ऑक्सीजन अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है । मछलियों को स्वस्थ रहने के लिये जल में घुली ऑक्सीजन की मात्रा 4-5 पी.पी.एम. तक होना चाहिये, पर साधारणतः इसकी मात्रा कम ही पाई जाती है। पौधे, जैव पदार्थों की अधिकता, बहिःस्राव, अत्यधिक भोज्य पदार्थों का जमाव तथा संग्रहण घनत्व के अधिक होने से ऑक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है जो मछलियों की मृत्यु का कारण बनती है। यह समस्या ग्रीष्म एवं वर्षा ऋतु तथा सुबह के समय अधिक होती है। इसका उपचार जल का वातन है जैसे जल में बाँस फिराना, जल को पंप करना आदि। इसमें मछलियों के संग्रहण दर को घटाना, अधिक भोजन न देना, बहिःस्राव को रोकना, जैव व खाद न देना, स्वच्छ जल का प्रवाह करना तथा गाद के ऊपरी सतह को हटाना आदि उपाय किए जा सकते हैं।

ख) *अमोनिया की आविषालुता*

जल निकाय में सड़े हुये पदार्थों का अत्यधिक जमाव हो जाने पर यह रोग फैलता है। मछली के गिल का रंग लाल एवं यह मोटा हो जाता है, इसे *हाइपरप्लासिया* कहा जाता है। इसका उपचार भी उपरलिखित हाइपोक्सिया के समान ही किया जाता है। इसमें जल शोधन के लिये जैव फिल्टर का भी प्रयोग किया जाता है।

ग) *हाइड्रोजन सल्फाइड की आविषालुता*

इसमें भी जल निकाय में सड़े हुये पदार्थों का अत्यधिक जमाव हो जाना ही कारण है। नितल मिट्टी का रंग काला हो जाता है तथा इसमें से सड़न की बदबू आने लगती है। इसके लिये जल में चूने का प्रयोग करना चाहिये, जल बदल कर गाद की ऊपरी सतह को हटा देना चाहिये।

घ) *गैस के बुलबुले उठना*

इसमें अधिकतर डिम्भ मछलियाँ ही प्रभावित होती हैं। जल में गैसों की अत्यधिक उपस्थिति से मछलियों के शरीर पर प्रभाव पड़ता है जिससे उनके विचरण में असुविधा होती है और आँखें बाहर की ओर निकल आती हैं। ऐसे में अगर अंगुली को पानी में डुबो कर देखा जाय तो गैस के बुलबुले अंगुली पर दिखाई देने लगते हैं। इसका समाधान निचले तल में जैव पदार्थों को हटाना है।

घुलित फास्फोरस

जलीय उत्पादकता में फास्फोरस का विशेष महत्व है। सामान्यतः मीठे जल वाले तालाबों में फास्फोरस की सांद्रता कम होती है। फास्फोरस दो तरह की होती है - अकार्बनिक एवं कार्बनिक परन्तु अकार्बनिक रुप अधिक महत्वपूर्ण है। फास्फोरस का स्तर यदि 0.05 पी.पी.एम. से कम हो तो अपर्याप्त माना जाता है जबकि 0.10 से 0.20 पी.पी.एम. मध्यम उत्पादकता वाला माना जाता है। उच्च उत्पादन के लिए फास्फेट का स्तर 0.2 से 0.6 पी.पी.एम. अनुकूल है।

प्राथमिक उत्पादकता

तालाब की प्राथमिक उत्पादकता सौर विकिरण की तीव्रता, जल की पारदर्शिता पादप प्लावकों का घनत्व तथा पोषक तत्वों का स्तर आदि पर निर्भर रहती है। यदि जल निकाय की प्राथमिक उत्पादकता अधिक हो तो सेकेन्डरी प्रोडक्शन एवं टेरटेरी प्रोडक्शन भी अधिक होती है। अतः प्राथमिक उत्पादकता मत्स्य तालाब के उपजाऊपन की महत्वपूर्ण सूचक है।

***

2. *संक्रमण एवं ग्रसन*

इसमें बीमारी के मुख्य कारक विषाणु, जीवाणु, प्रोटोजोआ तथा मेटाजोन जैसे परजीवी होते हैं, पर भारत में ऐसे संक्रमण कम ही पाये जाते हैं क्योंकि अधिकतर कीटाणु लाभदायक होते हैं तथा इनसे होने वाली हानियाँ भी कम हैं। संक्रमण से होने वाली कुछ बीमारियाँ निम्नलिखित हैं -

क) *ड्राप्सी*

यह एक बहुत ही सामान्य बीमारी है जो *एरोमोनास हाइड्रोफिला* तथा दूसरी *एरोमोनास* के संक्रमण से होती है। इसमें मछली के पेट में लाल रंग का द्रव एकत्रित हो जाता है तथा पेट बड़ा हो जाता है। शल्क ढीले पड़ जाते हैं, मछलियाँ सुस्त हो जाती हैं तथा उनके त्वचा पर घाव हो जाते हैं। इससे सेप्टीसेमिया भी हो सकता है। यह बीमारी प्रायः मानसून के पश्चात् तथा शीत काल से पूर्व दिखाई देती है तथा इस रोग से 7 दिन से 1-2 महीनों के भीतर ही 50 प्रतिशत मछलियाँ मर जाती हैं, जो बच जाती हैं उन्हें अल्सर हो जाता है। यह बीमारी अधिकतर कार्प मछलियों में होती है। इसकी उपचार विधि निम्न है -

- 2 मिनट तक 5 पी.पी.एम पोटाशियम परमैंगनेट के घोल में मछली को रखना।
- तालाब के जल में 1-3 पी.पी.एम पोटाशियम परमैंगनेट का छिड़काव।
- एक्वेरियम के जल में मैग्नेशियम सल्फेट 15 ग्रा./लीटर की दर से डालना।
- प्रति 100 कि.ग्रा. मछली के भोजन में ऑक्सीहेट्रासाइकलिन को 5 ग्रा. मिलाकर 10 दिनों तक संक्रमित मछलियों को खिलाना।
- जल की गुणवत्ता में वृद्धि करना।

ख)· *अल्सर वाली बीमारियाँ*

विभिन्न जीवाणु एवं परजीवी संक्रमण से त्वचा पर घाव हो जाता है। दूसरे शब्दों में अल्सर हमें मछली में हुये संक्रमण को बताता है। इसकी उपचार विधियाँ निम्न है-

- 1:2000 कॉपर सल्फेट वाले जल में रोगग्रस्त मछलियों को लगातार 3-4 दिनों तक 1 मिनट के लिये रखना।
- प्रति 100 कि.ग्रा. मछली के भोजन में ऑक्सीहेट्रासाइकलिन की मात्रा 7-8 ग्रा. तक मिलाकर 10-12 दिनों तक संक्रमित मछली को देना।
- तालाब के जल में 1-3 पी.पी.एम पोटैशियम परमैंगनेट का छिड़काव।

ग) *पुच्छ एवं फिन संक्रमण*

यह अधिकतर *साइटोफागा* नामक बैक्टीरिया के कारण होता है। कम गुणवत्ता वाले जल में यह रोग अधिक पाया जाता है, इसलिये पर्यावरणीय दबाव एवं जल की गुणवत्ता में कमी से यह बीमारी फैलती है। इसमें पुच्छ एवं फिन का रंग में परिवर्तन हो जाता है तथा ये क्षतिग्रस्त होकर अलग हो जाती हैं। कभी-कभी अल्सर पुच्छ एवं फिन पर भी पाया जाता है। इसकी उपचार विधियाँ निम्न है -

- जल की गुणवत्ता एवं इसके तापमान में वृद्धि करना।
- संग्रहण घनत्व को कम करना।
- घाव को घुलित (1:10) टिंचर आयोडिन या मरकुरोक्रोम से धोना।
- 1:2000 कॉपर सल्फेट वाले जल में मछली को 1-2 मिनट के लिये रखना।
- 1-2 पी.पी.एम बेन्जिन क्लोराइड में 1 घंटे तक मछली को रखना।
- तालाब के जल में 1-3 पी.पी.एम पोटाशियम परमैंगनेट का छिड़काव और फिर चूने का प्रयोग।

घ) *कॉलुमनरिस रोग*

यह बीमारी *फ्लेक्सिबेक्टर कॉलुमनरिस* नामक जीवाणु से होती है। प्रारंभ में मछली के सिर तथा पश्च भाग में सफेद या धूसर रंग के चकते हो जाते हैं तथा शरीर टेढा हो जाता है। गिल क्षतिग्रस्त होने लगता है। कार्प मछलियों में यह बीमारी अधिक फैलती है। किसी भी तरह का दबाव इस बीमारी को और भी बढ़ाता है। इसकी उपचार विधियाँ निम्न है -

- 5-10 पी.पी.एम क्लोरामफेनिकॉल या 10-20 पी.पी.एम क्लोर्टेट्रासाइकलिन के घोल में मछली को रखना।
- 2-5 मिनट तक 5 पी.पी.एम पोटाशियम परमैंगनेट के घोल में मछली को रखना।
- तालाब के जल में 3-5 पी.पी.एम पोटाशियम परमैंगनेट का छिड़काव।
- जल की गुणवत्ता मे वृद्धि करना।

ड.) *कतला की आँख में बीमारी*

जैसा कि नाम से विदित है यह बीमारी केवल कतला मछलियों की आँख में ही होती है। इसका कारण *एरोमोनास लिक्विफेनियस* नामक बैक्टीरिया का संक्रमण है। इसमें एक या दोनों ही आँखें प्रभावित होती हैं। सबसे पहले आँखों का रंग लाल हो

जाता है तथा उस पर सफेद पर्दा पड़ जाता है। कुछ नही दिखने के कारण मछलियाँ भोजन ग्रहण नही कर पाती, अंततः भूख से मर जाती हैं या परभक्षी मछलियों द्वारा उनका शिकार हो जाता है। यह बीमारी उनके मस्तिष्क को भी प्रभावित करती है। इसके उपचार के उपाय निम्नलिखित हैं।

- 5-10 पी.पी.एम क्लोरामफेनिकल के घोल में मछली को 2-3 दिन 1 घंटे तक रखना।
- तालाब के जल में पहले 3-5 पी.पी.एम पोटाशियम परमैंगनेट का छिड़काव फिर चूने का प्रयोग।

च) *मुँह का लाल होना*

यह रोग *यरसीनिया रूकर्जी* नामक बैक्टीरिया से होता है। इसमें मछली का मुँह, आँखें तथा गिल का रंग लाल हो जाता है। शरीर के विभिन्न भाग जैसे मलद्वार, कॉडल फिन पर घाव हो जाता है। मछलियाँ सुस्त हो जाती हैं तथा इनका पश्च भाग काला हो जाता है। दबाव देने पर मलद्वार से गाढ़ा पीले रंग का स्राव निकलता है। इस बीमारी का कारण है पर्यावरण का स्वस्थ न होना तथा दूसरे कारक हैं जल में घुलित ऑक्सीजन की कमी, जल का तापमान अधिक होना, जल की गुणवत्ता में कमी आदि। इसकी कोई विशिष्ट उपचार विधि नही है पर निम्नलिखित विधियों को अपनाया जा सकता है -

- 5 पी.पी.एम पोटाशियम परमैंगनेट के घोल में मछली को 2 मिनट तक रखना।
- तालाब के जल में 1-3 पी.पी.एम पोटैशियम परमैंगनेट का छिड़काव।
- प्रति 100 कि.ग्रा. मछली के भोजन में ऑक्सीहेट्रासाइकलिन की मात्रा 5 ग्रा. तक मिलाकर 10 दिनों तक संक्रमित मछली को देना।
- जल की गुणवत्ता में वृद्धि करना।

छ) *एडवार्ड सिलोसिस*

यह बीमारी *एडवार्ड सिला* प्रजाति के कीटाणु से संक्रमित होता है। इससे मछलियों के त्वचा पर घाव हो जाता है जिससे इनकी मृत्यु हो जाती है। यह बीमारी अधितकर कार्प और विडॉल मछलियों के अंगुलिकाओं तथा पोना मछलियों में होती है। उपरलिखित उपचार विधियों को इसमें अपनाया जा सकता है पर हैचरी में यह ठीक ढंग से किया जा सकता है।

ज) *मुँह में संक्रमण*

यह संक्रमण अधिकतर एक्वेरियम में पाले जाने वाली मछलियों में पाया जाता है। इसमें मछलियों के होंठ पर सफेद रूई जैसे पदार्थ का जमाव हो जाता है। होंठ फूल जाते हैं तथा क्षतिग्रस्त् होने लगते हैं। इसकी उपचार विधियाँ निम्नलिखित हैं -

- हाइड्रोजन पैराक्साइड के घोल को घाव पर लगाना।
- मुँह पर मार्थिओलेट थिओमर्सल के 0.1% टिंक्चर को लगाना।
- जल की गुणवत्ता मे वृद्धि करना।
- प्रति 100 कि.ग्रा. मछली के भोजन में ऑक्सीहेट्रासाइकलिन की मात्रा 5 ग्रा. तक मिलाकर 10 दिनों तक संक्रमित मछली को देना।

मछलियों में पाये जाने वाले फफूंदी रोग

फफूंदी एक परजीवी जीवाश्म है पर इनके समूह को हम खुली आँखों से भी देख सकते हैं। मछलियों में पाये जाने वाले विशेष फफूंदी रोग निम्नलिखित हैं।

अ) सैप्रोलेगानियासिस

भारत में मछलियों में होने वाली यह एक सामान्य बीमारी है जो *सैप्रोलिजिनिया* नामक जीवाणु से होती है । इसका कारण है हैचरी में गंदगी का होना। इस बीमारी में अण्डे पहले सफेद होते हैं तथा धीरे-धीरे काले रंग के हो जाते हैं और इनका निषेचन नही हो पाता है। अगर संक्रमण निषेचन के पश्चात् हो तो त्वचा पर सफेद रंग का आवरण पड़ जाता है जिससे अल्सर होने का खतरा रहता है । इसकी उपचार विधियाँ निम्न हैं

- मछली को 3-4% सामान्य नमक के घोल में 3-4 दिन तक रखना, या
- मछली को 1:2000 कॉपर सल्फेट के घोल में 3-4 दिन तक रखना, या
- मछली को 160 पी.पी.एम. पोटाशियम परमैंगनेट के घोल में 3-4 दिन तक रखना, या
- मछली को 1:1000 हरित मेलाकाइट के घोल में 30 सेकेन्ड तक रखना, या
- मछली को 1:15000 हरित मेलाकाइट के घोल में 10-20 सेकेन्ड तक रखना, या
- मछली को 1000 ली. जल तथा 2 ग्रा. हरित मेलाकाइट के घोल में 30 मिनट तक रखना,
- मछली को 1000 ली. एक्वेरियम जल तथा 1 ग्रा.दवा के घोल में रखना,

- घाव को टिंक्चर आयोडिन के घोल से धोना
- जल में 1-3 पी.पी.एम. पोटाशियम परमैंगनेट या 20 पी.पी.एम. फारमोलिन मिलाना
- हैचरी में 2-5 पी.पी.एम. हरित मेलाकाइट के घोल में 1-5 मिनट या 1:500 फारमोलिन में 10-15 मिनट तक रखना । फिर स्वच्छ जल में डालना तथा हैचरी को साफ रखना।

आ) फफूंदी गिल रोग

इसका संक्रमण ब्रान्कियोमाइसेज नामक बैक्टीरिया के कारण होता है तथा अधिकतर कार्प मछलियाँ ही प्रभावित होती है। प्रारंभ में गिल का रंग बदलने लगता है तथा यह पीले रंग का हो जाता है। संक्रमित मछली पानी के उपरी सतह परह तैरने लगती है तथा गिल फूलकर बड़ा हो जाता है । इसकी उपचार विधियाँ निम्न हैः-

- 3-5% सामान्य नमक के घोल में या 5 पी.पी.एम. पोटाशियम परमैंगनेट या 1: 2000 कॉपर सल्फेट के घोल में 1 मिनट तक रखना।
- जल में 1 पी.पी.एम. कॉपर सल्फेट मिलाना फिर चूने का प्रयोग करना।

प्रोटोजोआ रोग

प्रोटोजोआ एक सूक्ष्मजीव है जो अधिकतर जल में पाये जाते हैं तथा मछलियों को संक्रमित करते हैं । प्रोटोजोआ से होने वाली बीमारियाँ निम्नलिखित हैः-

अ) आइचः

इस संक्रमण में मछली की पूरी त्वचा में, गिल व फिन में छोटे छोटे दाने निकल जाते हैं । एक्वेरियम में पालन होने वाली मछलियों में यह अधिक होता है। इसकी उपचार विधियाँ निम्न है :–

- 2-3% सामान्य नमक में 7 दिनों तक मछली के 1 घंटे के लिये रखना
- 1 : 500 फारमोलिन में मछली को सात दिनों तक 30 मिनट के लिये रखना
- 15 पी.पी.एम. फारमोलिन में 1-5 मिनट तक रखना ।
- 1.2 हरे मालाचित में 3-7 दिनों तक 30 मिनट तक रखना ।
- 100 मि.ली. जल में 1 ग्रा. मेथिलीन ब्लु के मिले हुये घोल के 1 मि.ली. को एक्वेरियम जल के 5 ली. में मिलाना । इसे प्रत्येक 1-2 दिनों के अन्तर पर देते रहना जब तक मछलियाँ पूरी तरह से ठीक न हो जायें।

- प्रति हे. तालाब के जल में 20-100 ग्रा. सामान्य नमक का छिड़काव ।
- 0.5 पी.पी.एम. कॉपर सल्फेट को प्रति सप्ताह या 0.15 पी.पी.एम. हरे मालाचित को तालाब के जल में डालना ।
- जल के तापमान को 28-320° से. तक रखना ।

आ) ट्राइकोडिनियासिस

इसमें गिल सफेद पड़ जाता है तथा अति स्त्राव से इसके ऊपर एक सफेद रंग का स्तर जम जाता है। मछलियाँ ऊपरी सतह पर तैरने लगती हैं। इसके उपचार है :-

- 2-3% सामान्य नमक के घोल में या 100 पी.पी.एम. फारमोलिन में मछली को रखना
- तालाब के जल में 4 पी.पी.एम. पोटाशियम परमैंगनेट या 20-100 ग्रा. सामान्य नमक के घोल में या 25 पी.पी.एम. फारमोलिन या 0.15 पी.पी.एम. मालाचित को मिलाना
- जल की गुणवत्ता को बढ़ाना तथा संग्रहण दर को कम करना।

इ) गिल पर श्वेत धब्बों का रोग

गिल विभिन्न आकार के सफेद झिल्लियों से ढका होता है। बीमारी में ये झिल्ली पूरी तरह से गिल को ढ़क लेते हैं जिससे मछलियों को साँस लेने में तकलीफ होती है। इसका कारण *माइक्सोजोन* नामक परजीवी है। इसकी उपचार विधि है :-

- 3-5% सामान्य नमक में मछली को कुछ समय के लिए रखना ।
- तालाब में उपस्थित कीटाणु को मारने के लिये महुआ की खली या चूने का प्रयोग करना ।

ई) कोस्टियासिस

इस संक्रमण में मछली के शल्कों का रंग हल्के नीले रंग का हो जाता है तथा त्वचा पर अधिक स्त्राव होने के कारण यह अत्यन्त चिकना हो जाता है। हैचरियों में पोना मछलियों की मृत्यु इससे अधिक होती है । इसकी उपचार विधियाँ निम्नलिखित हैः-

- 2-3% सामान्य नमक में 10-15 मिनट तक मछली को रखना। इसे प्रति 2 दिनों के अन्तर पर करना चाहिए।
- 15 ली. एक्वेरियम जल में 37-40% फोरमलिन के 1 मि.ली. को मिलाकर मछली को 10-15 मिनट तक प्रति 3 दिन के अंतर पर रखना।

- 37-40% वाले फोरमलिन के 2-3 मि.ली. घोल को 10 ली. जल में मिलाना और प्रति 2 दिनों के अंतर पर 10-15 मिनट के लिये मछली को इसमें रखना।
- 1 : 5000 एसिटिक अम्ल में 1-10 मिनट तक रखना।

उ) वेलवेट/रस्ट बीमारी

इसमें मछलियों के त्वचा पर बालू या धूल के कण जम जाते हैं । यह अधिकतर एक्वेरियम में होता है। इसकी उपचार विधियाँ हैः-

- 2-3% सामान्य नमक के घोल में 10-15 मिनट तक रखना इसे 2 दिनों के अंतराल पर करते रहना चाहिए।
- 100 मि.ली. जल में 1 ग्रा. नीले मेथिलीन को मिला कर इसके 1 मि.ली. को 5 ली. एक्वेरियम जल में डालना। इसे भी 1-2 दिनों के अंतराल पर करना चाहिए।

ऊ) अण्डों का नरम होना

यह एक गंभीर समस्या है। इसमें अंडे नरम पड़ जाते हैं तथा निषेचन क्षमता कम हो जाती है। इसके लिये अंडों को 1: 18000 बैंगनी जिलेटिन में 5 मिनट लगातार 2 दिनों तक रखना चाहिए।

मछलियों में क्रस्टेशिया रोग

जीवाणु या फफूंदी संक्रमण की तुलना में क्रस्टेशिया रोग अधिक पाये जाते हैं। विशेषकर उन जल निकायों में जहाँ बहिःस्त्राव का प्रवाह होता है। मुख्य क्रस्टेशिया रोग निम्नलिखित हैः-

अ) अरगुलोसिस

इसमें मछलियों के शल्क, आँख के किनारे तथा फिन के नीचे सफेद पारदर्शी अंडाकार या चौकोर परजीवी पाये जाते हैं इससे मछलियों में बेचैनी होती है। इन परजीवियों के कारण अल्सर होने का खतरा बना रहता है । कभी-कभी इस संक्रमण से मछलियाँ मर जाती हैं और आर्थिक हानि का सामना करना पड़ता है। इसलिये इस ग्रसन का नियंत्रण बेहद कठिन है। इसकी उपचार विधियाँ है।

- 3-5% सामान्य नमक या 100 पी.पी.एम पोटाशियम परमैंगनेट के घोल में मछली को रखना।
- 5-10 से. तक 2000 पी.पी.एम. काइसोल के घोल में रखना।
- 100 मि.ली. जल में 0.1 ग्रा. पोटाशियम परमैंगनेट मिलाकर इसे परजीवी पर डालना चाहिए फिर इसे चिमटे की सहायता से हटा देना चाहिए।
- प्रति 10000 ली. तालाब के जल में 0.2-1 पी.पी.एम. गैमेक्सिन 0.25 पी.पी.एम. मालाथियोन तथा 8 मि.ग्रा. लिलेन को डालना।
- जल में पड़े हुये पेड़ की टहनियों को हटाना ।

आ) एरगासिलोसिस

इसमें मछलियों के गिल, मुँह, ओपरक्युलम, फिन आदि पर लम्बे पतले परजीवी पाये जाते हैं। इसकी उपचार विधियाँ हैं -

- 1: 1000 ग्लेसियल ऐसिटिक अम्ल में मछली को 5 मिनट तक रखना। फिर 1 घंटे तक 1% सामान्य नमक के घोल में रखना।
- प्रति 10000 ली. तालाब के जल में 0.2-1 पी.पी.एम. गैमेक्सिन, 0.25 पी.पी.एम. मालाथियोन तथा 8 ग्रा. लिनडेन को सावधानीपूर्वक डालना।
- परजीवियों को चिमटे से हटा देना।

मछलियों में कृमि संक्रमण

मनुष्य या दूसरे बड़े जीवों की भाँति मछलियों में भी कृमि संक्रमण आंत्रों में होता है। अधिकतर इनका संक्रमण बाहरी तौर पर भी होता है।

अ) *डैक्टीलो गाइरोसिस* - इनमें गिल का रंग फीका पड़ जाता है तथा श्वास को प्रभावित करता है। इषकी उपचार विधि हैं-

- 3-5% सामान्य नमक के घोल में 10-15 मिनट या 1: 5000 फारमोलिन में 5-10 मिनट या 1: 5000 फारमोलिन में 5-10 मिनट तक रखना।
- 1: 20000 एसिटिक अम्ल तथा 3% सामान्य नमक के घोल में एक दिन के अंतर पर रखना।
- जल में 25 पी.पी.एम. फारमोलिन या 4 पी.पी.एम. पोटाशियम परमैंगनेट या 0.5-1.0 पी.पी.एम. मेलाथियोन या 0.2 पी.पी.एम. नेगुवन को सावधानीपूर्वक मिलाना चाहिए पर इसमें कीटनाशकों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

आ) *काले धब्बों का रोग* इसमें मछली के त्वचा पर काले धब्बे हो जाते है। इषकी उपचार विधि हैं

- मछली को 3:100000 पायरिक अम्ल में 1 घंटे तक रखना।
- तालाब को घोंघे से मुक्त रखना।

इ.यू.स. रोग

इसे एपिजूटिक अल्सरेटिव सिन्ड्रोम कहा जाता है तथा यह एक गंभीर बीमारी है जिससे मछलियाँ बड़ी संख्या में मर जाती हैं। यह बीमारी अधिकतर नितल में रहने वाली मछलियों में पाई जाती है तथा इसका आगमन अधिकतर मानसून पश्चात् या जल के तापमान में कमी आने से होता है। इसके लक्षण हैं लाल धब्बों का होना जो बाद में अल्सर में परिणत हो जाता है और पुच्छ के क्षय होने का खतरा रहता है पर इसके संक्रमण कारक अभी भी पूरी तरह पता नहीं चल पाया है, पर कुछ फफूंदी जैसे *एफानो माइसेज इनवैडेन्स, गतिश्ल एसेमोनास* प्रजाति तथा कुछ विषाणु के कारण यह बीमारी होती है। इसका कोई विशिष्ट उपाय नहीं है पर जल की गुणवत्ता में वृद्धि, चूने का प्रयोग (100-600 कि.ग्रा./हे.) पोटैशियम परमैंगनेट का प्रयोग (4 पी.पी.एम.), ब्लीचिंग का प्रयोग (0.5 पी.पी.एम के दर से) तथा सीफाक्स (1 ली./हे.) के प्रयोग से इसे रोका जा सकता है।

विभिन्न मत्स्य रोगों की पहचान करना

उपरोक्त बीमारियों के अलावा भी ऐसे बहुत से रोग हैं जिनकी पहचान कठिन कार्य है क्योंकि अल्सर, घाव आदि पहचान चिन्ह बहुत सारी बीमारियों के लक्षण हैं इसमें यह पता नहीं चलता है कि वास्तविक बीमारी क्या है। इसलिए संक्रमण और ग्रसन के कारकों की पहचान आवश्यक है पर इसमें समय बहुत लगता है तथा इसके लिए उन्नत प्रयोगशाला और दक्ष लोगों की आवश्यकता है। इसलिये रोग सूचक यंत्रों का सहारा लेना चाहिए। हाल में ही विकसित पी.सी.आर. एवं मोलेक्यूलर तकनीक रोग सूचक यंत्र है जिससे रोग के पहचान में बहुत ही सहायता प्राप्त होती है।

रोग नियंत्रण

रोग नियंत्रण कोई आसान और कम समय में होने वाला कार्य नहीं है पर निम्नलिखित बातों को अपनाया जा सकता है -

- जल की गुणवत्ता को बनाये रखना तथा पर्यावरणीय प्राचलों पर नियंत्रण रखना।

- अधिक भोज्य पदार्थों या उर्वरकों का प्रयोग न करना।
- सीमा से अधिक मछलियों का संग्रहण न करना।
- अगर मछलियों की संख्या अधिक है तो निकाय में जल की मात्रा को बढ़ाने के साथ साथ वातन को बढ़ाना, स्वच्छ जल का प्रवाह करना तथा भोज्य पदार्थों को नियंत्रित करना चाहिए।
- संक्रमित मछलियों को अलग निकाल लेना चाहिए।
- तरुण मछलियों का पालन अलग होना चाहिए।
- अपतृण मछलियों पर नियंत्रण रखना।
- मत्स्यन यंत्रों को कीटाणु मुक्त रखना चाहिए तथा प्रयोग से पहले पूरी तरह से सुखा लेना चाहिए। एक ही जाल का बार-बार प्रयोग नहीं करना चाहिए। जाल को भी कीटाणु मुक्त रखना चाहिए।
- संग्रहण पूर्व मछलियों को कीटाणु मुक्त करना चाहिए।
- मछलियों तथा विदेशी प्रजातियों को एक जल निकाय से दूसरे निकाय में लाते समय उन्हें 2-3 सप्ताह तक अलग-थलग रखना चाहिए।
- संक्रमित मछलियों का इलाज करना चाहिए।
- अगर आवश्यक हो तो मछलियों का टीकाकरण भी करना चाहिए।

परिकलन

- 1 पी.पी.एम.-1000 ली. जल में 1 ग्रा.
- 1: 1000 - 1000 ली. जल में 1 ग्रा. या 1 मि.ली.
- 1% - 1 ली. जल में 10 ग्रा.
- फारमोलिन = 37-40% फॉरमलडिहाइड
- 10 पी.पी.एम. - 100 ली. जल में 1 मि.ली.

बाथ ट्रीटमेंट

100 ली. औषधीय जल में जिसमें एरेटर की सुविधा हो, 1-2 कि.ग्रा. मछली को डुबोना। अगर मछलियों में संक्रमण अधिक है तो सांद्रता और समय दोनों ही कम कर देना चाहिए। गिल में घाव होने पर सावधानी बरतनी चाहिए।

***

मत्स्य पोषकता एवं मत्स्य आहार की तैयारी

अंशुमन हाजरा, वरिष्ठ वैज्ञानिक
केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर

भूमिका

पेन व केज पालन में मछलियों के लिए आवश्यक पोषक तत्व एवं मत्स्य आहार के विकास के लिए पहले इसके विभिन्न पहलूओं पर विचार करना आवश्यक है। यद्यपि जलीय कृषि में पौष्टिक आहार के संदर्भ में काफी प्रगति हुई, परन्तु अब भी यह जानकारी सम्पूर्ण नहीं है जिससे किसी भी प्रकार की मछली के लिए एक सम्पूर्ण भोजन को सूत्रबद्ध किया जा सके। स्थलीय जीवजातों का पौष्टिक भोजन वैज्ञानिक सूत्रों पर आधारित है परन्तु जलीय जीवों के लिए इसका अभाव है, इसके कई कारण हैं।

मछलियों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की जानकारी महत्वपूर्ण है क्योंकि मत्स्य पालन में परिचालन लागत का लगभग 50-60 प्रतिशत मत्स्य आहार पर खर्च होता है। यह सत्य है कि मत्स्य पालक मत्स्य आहार के संयोजन में बदलाव करते हैं ताकि कम खर्च पर अधिक लाभ हो सके। मछलियों के लिए आवश्यक मत्स्य पोषक तत्वों के अध्ययन में यह ध्यान देना आवश्यक है कि मछलियों की अनेक प्रजातियाँ हैं, एंक प्रजाति के लिए उंपयुक्त आहार दूसरी प्रजाति के लिए अनुपयुक्त भी हो सकता है। मछलियों के विकास एवं शारीरिक गठन के लिए प्रोटीन की आवश्यकता है, लिपिड (वसा) विकास के लिए ही नहीं बल्कि ऊर्जा उत्पादन के लिए और कार्बोहाइड्रेट ऊर्जा की आपूर्ति के लिए भी आवश्यक है।

आहार में बड़ी मात्रा में स्थूल पोषक पदार्थ (प्रोटीन, लिपिड, कार्बोहाइड्रेट) के अलावा कम मात्रा में सूक्ष्म पोषक पदार्थों की आवश्यकता भी होती है। ये पोषक तत्व विटामिन एवं खनिज पदार्थ हैं। विटामिन एवं खनिज पदार्थ शारीरिक क्रियाओं के लिए आवश्यक हैं।

यद्यपि विश्व के अनेक भागों में मछलियों में आवश्यक पोषक तत्वों तथा आहार को सूत्रबद्ध करने तथा विभिन्न प्रजातियों की मछलियों के आहार में कितने प्रकार के पोषक तत्वों की आवश्यकता है, इस पर कार्य हो रहा है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि एक ही प्रजाति के लिए आहार के अनेक सूत्र होते हैं, इसकी आयु, आमाप आदि के अनुसार।

तालिका 1 में दिए गए वर्गीकृत पहलूओं के अलावा अनेक अन्य पहलू भी हैं जिन पर एक सफल आहार बनाने के लिए ध्यान देना आवंश्यक है। ये पहलू हैं - उपभोग किए जानेवाले आहार का परिमाण तथा आहार का स्तर, विकास और परिवर्तन अनुपात, अन्य आहारिक मूल्यांकन जैसे विशेष विकास दर, नेट प्रोटीन उपयोगिता (NPU), प्रोटीन क्षमतावाला आहार (PER), पोषक तत्वों की पाचकता, आहार का स्वरुप, पर्यावरणीय अवस्था आदि जिनकी चर्चा वर्तमान विषयवस्तु की परिधि से बाहर है।

तालिका - 1 मछलियों में आवश्यक पोषक तत्व एवं मत्स्य आहार

क) पोषक तत्व की आवश्यकताएँ	1) एमिनो एसिड व प्रोटीन 2) लिपिड (वसा) 3) कार्बोहाइड्रेड 4) प्रोटीन व उर्जा अनुपात 5) अपरिष्कृत रेशेदार आहार 6) विटामिन 7) खनिज 8) विकास के विशेष प्रेरक
ख) आहार सूत्रीकरण	1) सामग्री का चयन, प्राप्ति एवं परिवहन 2) सामग्रियों का अनुपात 3) सूत्रीकरण 4) चूर्ण बनाना एवं मिलाना 5) अंतिम उत्पाद 6) आहार का संग्रहण 7) जलीय स्थिरता एवं पोषक तत्व

आवश्यक पौष्टिकता

अमिनो एसिड, प्रोटीन तथा प्रोटीन व ऊर्जा का अनुपात

जहाँ तक मछलियों में अमिनों एसिड की आवश्यकता का प्रश्न है, C^{14}- ट्रेसर तकनीक से यह ज्ञात हुआ है कि मछलियों में भी उन्हीं एमिनों एसिड की आवश्यकता होती है जो अन्य वर्ग के पशुओं के लिए होती हैं। ये एमिनों एसिड हैं - मिथियोनाइन, अरजीनाइन, ट्रिप्टोफान, थ्रियोनाइन, वेलाइन, आइसोल्यूसाइन, फेनिललेनाइन, हिस्टीडाइन और लाइसाइन। संक्षिप्त में इन्हें MATTVILPHLY कहा जाता है। रेडियोधर्मी तकनीक से यह ज्ञात नहीं हो सका कि इन अम्लों की कितनी मात्रा की आवश्यकता होती है। अब भी इस प्रश्न का समाधान नहीं हो सका कि मछलियों की अधिकतम विकास के लिए ये 10 अम्ल का कितनी मात्रा में आहार में मौजूद रहना आवश्यक है, इस दिशा में प्रयास किए जा रहे हैं। यह देखा गया है कि जिस आहार से मछलियों में अच्छी विकास हुई है इसका मछली के शरीर में मौजूद एमिनों एसिड की संरचना से मेल खाता है। इस सूचना से उत्साहित हो कर अनेक मत्स्य प्रजातियों के जैव-रासायनिक संरचना का विश्लेषण कर मत्स्य आहार को सूत्रबद्ध करने का प्रयास किया गया है। यह पाया गया है कि फिशमील के अलावा, अच्छे प्राकृतिक आहार जैसे - सीपी, स्क्विड मील, म्इसिड मील आदि काफी उपयोगी हैं। उपलब्ध सूचनाओं से यह स्पष्ट होता है कि विभिन्न प्रजातियों में आवश्यक एमिनो अम्लों का निर्धारण अब तक पूर्ण रुप से नहीं हुआ है। अतः इस दिशा में अनुसंधान की आवश्यकता है। विभिन्न प्रकार की मत्स्य प्रजातियों में अलग-अलग प्रकार के एमिनों अम्लों की आवश्यकता होती है। अतः जब तक अलग अलग प्रजातियों की मछलियों के लिए आवश्यक अलग-अलग प्रकार के एमिनों अम्लों की पहचान नहीं होती, तब तक मछलियों की शारीरिक संरचना के अनुसार उन्हें एमिनों अम्लयुक्त आहार दिया जाना बेहतर है, विशेषकर सिंथेटिक आहार के विषय में।

जहाँ तक मछलियों में प्रोटीन की आवश्यकता का प्रश्न है, यहाँ अनेक प्रकार के सुझाव दिए गए हैं। कार्प मछलियों के आहार में 25-30% प्रोटीनों की आवश्यकता का आंकलन किया गया है। वांछित प्रोटीन की आवश्यकता में भिन्नता प्रजातियों के आमाप, आयु, चयनित आहार आदि के कारण है। यह भी देखा गया है कि कम प्रोटीन/कम ऊर्जा या उच्च प्रोटीन/उच्च ऊर्जा की तुलना में कम प्रोटीन/उच्च ऊर्जा या उच्च प्रोटीन/कम ऊर्जा मछलियों के विकास के लिए बेहतर है। इससे ज्ञात होता है कि आहार में प्रोटीन और ऊर्जा का अनुपात (P/E) कितना महत्वपूर्ण है।

आहार स्त्रोतों का प्रभाव

पहले मत्स्य आहार अनेक स्त्रोतों से प्राप्त किया जाता था जिनमें पशु स्त्रोत की भी महत्ता थी जैसे- फिश मील, छीछड़े, रेशम कीट के बच्चे आदि। इसके बाद धीरे धीरे शाकाहारी स्त्रोतों के प्रोटीन भी मत्स्य आहार में दिये जाने लगे। आहार पदार्थ जैसे मोलस्क का मांस, स्क्विड मील, सीपियों की मांस की तुलना में सोयाबीन आहार से उच्च विकास दर प्राप्त हुआ है। इस प्रकार प्रोटीन की मात्रा ही नहीं बल्कि इसके स्त्रोत का प्रभाव भी मत्स्य विकास पर पड़ता है। मत्स्य पालन में सोयाबीन आहार महत्वपूर्ण है। आहार में इसकी अधिकतम सीमा का भी निर्धारण किया गया है। यह देखा गया है कि 30% प्रोटीनयुक्त आहार में 60% प्रोटीन सोयाबीन के रुप में दिया जा सकता है। पशु मूल के प्रोटीनों में स्क्विड मील, मइसिड मील; आयस्टर मांस, बूचड़खाना अपरद्द, रेशम कीट के बच्चे आदि काफी महत्वपूर्ण हैं। स्क्विड मील 6% हो तो अच्छी विकास दर देखी गई है। प्रोटीन के संदर्भ में अंततः यह कहा जा सकता है कि विभिन्न प्रजातियों की मछलियों की आवश्यकता एक समान नहीं होती। अतः 25-30% स्तर कार्प मछलियों सहित सभी प्रजातियों के लिए उपयोगी होगा।

लिपिड

मछलियों के आहार में प्रोटीन, ऊर्जा स्तर की चर्चा के उपरान्त लिपिड (वसा) की मात्रा पर विचार करना आवश्यक है। साधारणतः मछलियों के आहार में लिपिड की आवश्यकता नहीं होती है। आहार में अनावश्यक रुप से उच्च मात्रा में लिपिड देने से मछलियों पर प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ सकता है साथ ही मत्स्य आहार का मूल्य भी अधिक हो जाता है। मत्स्य आहार के कुछ सूत्रों में देखा गया है कि 8-10% अपरिष्कृत वसा से अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं। कुछ अन्य सूत्रों में देखा गया है कि 4% स्क्विड लीवर ऑयल आहार में दिया जाए तो अच्छा विकास होता है पर 15% से अधिक हो जाने पर विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। परिष्कृत सिंथेटिक आहार के उपयोग में यह देखा गया गया है कि 10 प्रतिशत लिपिड देना बिल्कुल न देने की तुलना में अच्छे परिणाम देते हैं जबकि बिल्कुल न देना या 12% तक देने की तुलना में 6 प्रतिशत का समावेश बेहतर होता है। अतः यह देखा गया है कि मत्स्य आहार में वसा की अधिक आवश्यकता नहीं होती एवं अधिकतम 5-10% पर्याप्त है।

कार्बोहाइड्रेट

मछलियों में कार्बोहाइड्रेट की आवश्यकता संभवतः एन्जाइमों जैसे अमिलेस, माल्टेस, सेकाहरसे, सेलुलेस आदि की क्रियाओं के कारण उत्पन्न होता है। ये कार्बोहाइड्रेट ऊर्जा उत्पादन (TCA cycle), ग्लाइकोजेनस के रुप में जिगर तथा पेशियों में कार्बोहाइड्रेट का संग्रहण, स्थूल अम्लों को उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्रारंभिक सूचनाओं से यह ज्ञात होता है कि मछलियाँ उच्च दर तक कार्बोहाइड्रेट का उपभोग कर लेती हैं। कार्प मछलियों में ग्रास कार्प उच्च मात्रा में पत्तेदार पदार्थों का उपापचयन (मेटाबोलाइजेशन) करती है एवं सेलूलोसिक तत्वों को पचा लेती है। मछलियों का उच्च विकास आहार में 40 प्रतिशत कॉर्न स्टार्च से देखा गया है जो 10 प्रतिशत स्टार्च, 40 प्रतिशत या 10 प्रतिशत ग्लूकोजयुक्त आहार से बेहतर होता है। प्रयोगों में देखा गया है कि जिस आहार में 15 प्रतिशत व्हीट स्टार्च मिलाया गया है वे आहार ग्लूकोज, आयस्टर ग्लाइकोजेन, डेक्सट्रिन मिला हुआ या बिना कार्बोहाइड्रेट के आहार की तुलना में, मत्स्य विकास का उच्च दर दर्शाया है। विभिन्न प्रयोगों से यह ज्ञात होता है कि संभवतः मछलियाँ अनेक प्रकार के कार्बोहाड्रेट जैसे व्हीट स्टार्च, कॉर्न स्टार्च, डेक्सट्रिन आयस्टर ग्लाइकोजेन आदि, परन्तु पोटाटो स्टार्च अच्छी तरह पचा नहीं पाती हैं। व्हीट स्टार्च कम प्रभावकारी होता है।

रेशेदार मत्स्य आहार

मत्स्य आहार में अपरिष्कृत रेशेदार भोजन संबंधित सूचनाएँ अपर्याप्त हैं। इस दिशा में अनुसंधान कार्य काफी कम हुआ है। शाकाहारी मछलियों में रेशेदार भोजन की उपयोगिता को उल्लेखित किया गया है, उदाहरणार्थ- ग्रास कार्प। जब मत्स्य आहार में 5% टर्निक ग्रीन का समावेश किया जाए तो विकास दर में वृद्धि, उत्तरजीविता आदि में विकास देखा गया है। मछलियों के पैलेटेड आहार में 8.75% रेशायुक्त आहार का समावेश अच्छे विकास दर को दर्शाती है। इस दिशा में और अधिक कार्य की आवश्यकता है, क्योंकि अनेक प्रकार के सूत्रबद्ध आहार में शाकाहारी मूल के विभिन्न पदार्थ पाये जाते हैं, जिनमें काफी मात्रा में रेशा उपलब्ध रहते हैं।

विटामिन

यह विदित है कि मत्स्य आहार में विटामिन *सी.* एवं *ई.* के साथ बी ग्रुप के विटामिनों की भी आवश्यकता होती है। यह भी ज्ञात हुआ है कि मत्स्य आहार में विटामिन दिये जाने पर मछलियों का विकास अच्छा होता है विशेषकर जब ये

विटामिन खनिजों के साथ दिया जाता है। अनेक मत्स्य वैज्ञानिकों द्वारा मत्स्य आहार में विटामिन *सी.* के महत्व पर बल दिया गया है। विटामिन *सी.* की कमी मछलियों को बीमार एवं इनमें अनेक रोगों को जन्म देती हैं। सामान्यतः मछलियों में 0.3% विटामिन *सी.* की आवश्यकता होती है जिससे मत्स्य रोगों को दूर रखा जा सकता है। विभिन्न प्रकार की विटामिनों की मात्राओं का निर्धारण नहीं हुआ है। इसकी अनुपस्थिति में यह बेहतर होगा की अन्य छोटे स्थलीय प्रजातियों जैसा ही मत्स्य आहार में विटामिनों का समावेश किया जाय। अतः उचित जानकारी के बिना अत्यधिक विटामिनों का उपयोग प्रतिकूल प्रभाव के अलावा लागत खर्च भी बढ़ा सकता है।

खनिज पदार्थ

मत्स्य आहार में खनिजों की कमी तथा अत्यधिक मात्रा में होना दोनों के दुष्प्रभाव के कारण मत्स्य वैज्ञानिकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ है। एक लंबी अवधि तक वैज्ञानिक आधार के बिना ही घरेलू पशुओं की भाँति मत्स्य आहार में Calcined shell का उपयोग होता रहा है। मत्स्य आहार में 1-2% Ca तथा 1.04% P वाला आहार मत्स्य विकास में अच्छे परिणाम दिये हैं। इसके विपरीत क्लोराइड, सोडियम, कैलशियम और पोटाशियम की आवश्यकता विशारण नियमों द्वारा पूर्ति होती है। मत्स्य आहार में पोटाशियम की आवश्यकता पर बल दिया गया है। इसमें फाइटेट फास्फोरस की भूमिका पर भी जोर दिया गया है। मत्स्य आहार में कैलशियम और पोटाशियम के अलावा अन्य खनिजों की आवश्यकता संबंधित सूचना उपलब्ध नहीं है। अतः मत्स्य आहार में खनिजों का समावेश भी छोटे घरेलू, पशुओं के आहार जैसा ही होना चाहिए या उष्ण जल मछलियों की भाँति होना चाहिए।

विकास के विशेष प्रेरक

अंततः कम समय में मछलियों की अत्यधिक वृद्धि के लिए किन्हीं विशेष प्रेरकों की चर्चा कम ही हो सकती है। मछलियों के विकास में polyunsaturated fatty acid (PUFA) विशेषकर लिनोलेनिक सिरीज का महत्व है। मछलियों की कुछ प्रजातियों में विभिन्न प्रकार के polyunsaturated fatty acid (PUFA) एसिड से तेज विकास देखा गया है। जिन मछलियों के आहार में 1-2% लिनोलेनिक एसिड दिया गया है उनमें काफी अच्छा विकास देखा गया है। कुछ अन्य मत्स्य प्रजातियों में 1% लिनोलेनिक एसिड से अच्छा विकास दर देखा गया है। लिनोलेनिक एसिड का उपयुक्त अनुपात अच्छा विकास दर दर्शाता है। समुद्रीय मत्स्य तेल, सामान्यतः W_3

सीरिज के फैटी एसिड जो विजीटेवुल ऑयल में ज्यादातर पाया जाता है, से बेहतर होता है। कुछ मत्स्य प्रजातियों में W_6 की अधिकता से मछलियों की मृत्यु हो जाती है। कॉर्न ऑयल जो एक प्रकार का विजीटेबुल ऑयल है और जिसमें उच्च मात्रा में W_6 एसिड होते है, मछलियों की मृत्यु का कारण बनते हैं। स्कवीड मील, ब्राइन श्रिम्प से बना आहार जिसमें वांछित मात्रा में फैटी एसिड होते हैं अच्छी विकास दर दर्शायी है। मछलियों में फैटी W_3 एसिड या W_6 सेटुरेटेड फैटी एसिड की अपेक्षा अच्छी विकास दर दर्शाया है।

मत्स्य आहार का सूत्रीकरण

मत्स्य आहार के सूत्रीकरण में मौलिक तथ्य हैं पदार्थों का चयन, उपलब्धता एवं परिवहन। विभिन्न प्रकार के आहार संघटकों को चुना जा सकता है जिनमें मैसिड मील, स्क्वीड मील, सीपी का मांस, आयस्टर मांस, फिश मील, सोयाबीन मील, कार्न स्टार्च, रेशम कीट के बच्चे, बीट स्टार्च, पोटाटो स्टार्च, मूँगफली की खली, सरसों की खली, कपास बीज का मील, दाल का अपरद्, कृषि-औद्योगिक सह उत्पाद, कार्ड लिवर आयॅल, लिवर ऑयल, भेल ऑयल, समुद्रीय मत्स्य तेल, पाम ऑयल, कार्न ऑयल आदि हैं। आहार संघटकों का चयन *बेस्ट बाइ* तकनीक द्वारा किया जा सकता है। स्थानीय रुप से सस्ते दरों में उपलब्ध संघटकों का उपयोग किया जाना चाहिए।

आहार सूत्रीकरण कार्य में दूसरा चरण है इन संघटकों की गुणवत्ता के लिए इनका रासायनिक विश्लेषण। संघटकों के रासायनिक संरचना सूत्रीकरण को प्रभावित करती है।

अंतिम चरण में मछलियों को आहार किस रुप में दिया जाना है यह भी एक महत्वपूर्ण कड़ी है। मत्स्य पालन में पालन पद्धति एवं मछलियों के आमाप पर आहार का रुप निर्भर करता है जैसे - जेल, फ्लेक्स स्टीम्ड पैलेट, ड्राइ पैलेट्स, कैप्सूल आदि।

सूखे आहार की तुलना में गीला आहार वांछित है परन्तु इसे कम ही अपनाया जाता है क्योंकि इस प्रकार का आहार फफूंदी, बैक्टीरिया आदि से संक्रमित हो जाता है। कुछ मछलियाँ सूखे आहार को तथा कुछ गीले आहार को पसन्द करती हैं। उपर्युक्त पद्धति से बनी मत्स्य आहार, जिसमें पौष्टिकता संबंधी अनेक पहलूओं पर ध्यान दिया गया हो, मत्स्य उत्पादन को काफी हद तक बढ़ा सकता है।

***

कार्प मछलियों का प्रेरित प्रजनन

उत्पल भौमिक, प्रधान वैज्ञानिक
केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर

भूमिका

भारतीय मेजर कार्प मछलियाँ सामान्यतः प्राकृतिक आवास नदीय प्रवाह में ही मानसून बाढ़ के दौरान प्रजनन करती हैं। प्रेरित प्रजनन तकनीक के विकास से पूर्व कार्प बीजों का एकमात्र स्त्रोत नदीय जल ही था। अतः प्राप्त बीजों में वांछनीय एवं अवांछनीय दोनों ही प्रकार के बीज होते थे। बीजों की उस खेप में से (5-7 मि.मी.) वांछनीय बीजों को छाँटना व्यवहारिक रुप से सम्भव नही था। इसके अलावा नदीय स्त्रोत से बीज कुछ विशेष स्थानों से ही प्राप्त होते थे जिन्हें लम्बी दूरी तक ले जाने में बड़ी समस्या थी क्योंकि परिवहन के दौरान इन बीजों की मृत्यु दर बहुत अधिक हो जाती थी। साथ ही परिवहन का खर्च भी अधिक होता था। इन समस्याओं के अतिरिक्त बीजों की उपलब्धता भी मानसून पर आधारित होती थी।

मत्स्य बीजों की उपलब्धता हेतु कृत्रिम प्रजनन के निरन्तर प्रयास किए गए एवं अंततः वर्ष 1957 तथा 1962 में सफलता प्राप्त हुई जब पहले भारतीय कार्प फिर चायनीज कार्प का प्रेरित प्रजनन सफलतापूर्वक कराया गया। मछलियों को पियूष ग्रन्थियों के सार की सुई लगाई गई जिसे आज प्रेरित प्रजनन या हाइपोफाइजेशन के नाम से जाना जाता है। इस सफलता के उपरान्त् इस तकनीक में काफी सुधार किया गया है जिससे अतिजीविता दर में वृद्धि हुई है।

प्रेरित प्रजनन का अर्थ है कि मछलियों को पियूष ग्रन्थियों के सार या अन्य सिंथेटिक हारमोन दे कर प्रजनन के लिए प्रेरित करना। इस तकनीक की सफलता का मूल, प्रजनक मछलियों के चयन तथा इनका रख रखाव है।

प्रजनक मछलियों का रख-रखाव

प्रेरित प्रजनन की सफलता का मूल मंत्र प्रजनक मछलियों का सही पालन-पोषण है। इस कार्य के निम्नलिखित चरण हैं :

प्रजनन के लिए तालाब का चयन

छोटे स्तर के मत्स्य पालकों के अनुकूल मध्यम आकार के तालाब (0.1-0.2 हे.) जिसकी गहराई 1.5-2.0 मी. तथा आयताकार हो इस कार्य के लिए उपयुक्त है। यदि व्यवसायिक तौर पर प्रजनन किया जाना है तो बड़े तालाबों का भी चयन किया जा सकता है। तालाब की सतह सपाट चिकनी मृतिका-दुमट जिसकी निचली सतह 10-15 से.मी. गादयुक्त हो, प्रजनन के लिए अति उपयुक्त है। तालाब में जल प्रवेश एवं निकासी की सुविधा हो तो बेहतर होता है। तालाब को बाढ़ एवं सूखे से बचाये रखना होगा एवं सूर्य की किरणें तालाब में पड़ती रहें, विशेषकर जनवरी से फरवरी के दौरान जिससे मछलियों में अंडोत्पत्ति शक्ति का विकास होता है।

तालाब की तैयारी

बारहमासी तालाबों में अनेक प्रजातियों की मछलियाँ मौजूद रहती हैं जिनमें से कुछ परभक्षी प्रवृत्ति की भी होती हैं। बड़ी आकार वाली परभक्षी मछलियाँ (बोल, साल, सोल, चितल) बड़ी कार्प अंगुलिकाओं को भी खा जाती हैं। छोटी परभक्षी मछलियाँ (लता, चंग, कोरा, मागुर, सिंघी आदि) कार्प की बड़ी अंगुलिकाओं को नहीं खा सकती हैं किन्तु अन्य तरह से नुकसान पहुँचाती हैं। ये मछलियाँ तालाब में प्रजनन करती हैं जिससे स्थान, प्राकृतिक मत्स्य आहार एवं कृत्रिम आहार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जबकि अन्य छोटी या अवांछित मछलियाँ जैसे पुंटी, चंदा, मौराला, खोलसा आदि भी मानसून के दौरान प्रजनन करती हैं एवं इनसे भी कार्प बीजों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

अतः इस प्रकार की मछलियों का उन्मूलन आवश्यक है। इन मछलियों का उन्मूलन महुए की खली के उपयोग (200-2500 कि.ग्रा./हे./मीटर गहराई) द्वारा किया जा सकता है। मछलियों को मारने के लिए ब्लिचिंग पाउडर का भी उपयोग (200-350 कि.ग्रा./हे./मीटर गहराई) किया जा सकता है। यूरिया (100 कि.ग्रा./हे./मीटर गहराई) और ब्लीचिंग पॉउडर (175 कि.ग्रा./हे./मीटर गहराई) भी इन मछलियों को मारने के लिए पर्याप्त है किन्तु यूरिया का प्रयोग ब्लीचिंग पाउडर के प्रयोग से 24 घंटे पहले किया जाना चाहिए। दोनों के प्रयोग के बाद तालाब को 20 से 22 दिन तक इसी तरह छोड़ दिया जाना चाहिए।

प्रजनक मछलियों का चयन एवं संग्रहण

इस कार्य के लिए स्वस्थ एवं रोगमुक्त प्रजनक मछलियों की आवश्यकता है।

प्रजनकों का संग्रहण 2000 कि.ग्रा./हे. की दर से किया जाए जिनका अनुपात 40% ऊपरी सतह पर भोजन प्राप्त करनेवाली प्रजातियाँ जैसे कतला (25-30%) तथा सिल्वर कार्प (10-15%), 30% तालाब की गहराई के मध्य भोजन लेनेवाली प्रजातियाँ जैसे रोहू (20-25%) एवं ग्रास कार्प (5-10%) और 30% प्रतिशत निचली सतह पर भोजन लेनेवाली प्रजातियाँ जैसेः मृगल (20-25%) एवं कॉमन कार्प (15-10%) होना चाहिए। उपर्युक्त अनुपात तालाब की रुपरेखा, बाजार की माँग, उपभोक्ताओं की पसन्द के अनुसार बदला भी जा सकता है। संग्रहण के दौरान इस विषय पर ध्यान दिया जाए कि कॉमन कार्प प्रजाति की मछलियाँ या तो सिर्फ नर मछलियाँ हो या फिर मादा। नर एवं मादा कॉमन कार्प मछलियों को एक साथ संग्रहित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि यह प्रजाति स्वैच्छिक रुप से भी तालाब में प्रजनन करती हैं, जिससे मत्स्य बीजों में प्राकृतिक आहार, आक्सीजन, जगह एवं पूरक आहार के लिए स्पर्धा उत्पन्न हो जाती है।

तालाब का उर्वरीकरण एवं जलीय गुणवत्ता

तालाब का उर्वरीकरण कार्य संग्रहण के तुरन्त बाद ही प्रारम्भ हो जाता है, गोबर 2 टन/हे. या कम्पोस्ट खाद 10000 कि.ग्रा./हे. की दर से दिया जाता है। तालाब में चूने का प्रयोग 200 कि.ग्रा./हे. की दर से किया जाना आवश्यक है ताकि तालाब की स्वच्छता बनी रहे एवं साथ ही जल एवं मृदा में आवश्यक पी.एच. स्तर भी हो। कार्बनिक उर्वरकों के उपयोग के 15 दिनों बाद अकार्बनिक उर्वरकों (यूरिया 75-100 कि.ग्रा.) को 150-250 कि.ग्रा./हे. ट्रिपल सुपरफास्फेट के साथ मिलाकर देने की आवश्यकता होती है। यदि तालाब में पोटाश की कमी हो तो पोटाश म्यूरियेट को 40-50 कि.ग्रा./हे. दर से अन्य अकार्बनिक उर्वरकों के साथ मिलाकर दिया जाता है। तालाब के जल को प्रत्येक 15 दिनों में कम से कम एक बार काफी हद तक हिलाना डुलाना चाहिए ताकि निचली सतह पर एकत्रित हानिकारक गैस ऊपर उठ सके।

जाल चलाना

महीने में कम से कम एक बार जाल चलाना चाहिए ताकि मछलियों के स्वास्थ्य, जननग्रन्थियों के विकास, परजीवियों एवं मत्स्य रोगों की जानकारी मिल सके। प्रजनक मछलियों के शारीरिक भार के अनुरुप पूरक आहार की आवश्यकता के आंकलन हेतु भी जाल चलाना आवश्यक है।

सम्पूरक आहार

प्रजनक मछलियों को पूरक आहार के रूप में चावल की भूसी तथा मूँगफली या सरसों की खली 1:1 अनुपात में मिलाकर इनके कुल शारीरिक भार का 1-2% दिया जाता है। इस पूरक आहार में फिश मील या रेशम कीट के बच्चे भी दिए जाते हैं ताकि आहार में उपयुक्त प्रोटीन भी हो। आहार को भिगोकर गोलियों के रूप में बनाकर फीडिंग ट्रे की सहायता से दिया जाता है। पूरक आहार को तीन भागों में बाँटकर एक भाग ऊपरी सतह से 1.5 से 2.0 फीट नीचे ताकि सतह पर भोजन लेनेवाली प्रजातियाँ इसे खा सकें, दूसरा भाग जल की गहराई के मध्य भाग में तथा तीसरा भाग निचली सतह पर दिया जा सकता है। आहार को अनावश्यक रूप से नष्ट होने तथा तालाब की जलीय अवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डालने से रोकने के लिए आहार को हमेशा ट्रे या टोकरियों में ही देना चाहिए। ग्रास कार्प मछलियों के लिए जलीय पौधे जैसे हाइड्रिला, नजास, लेम्ना, स्पाइरोडेला आदि तथा स्थलीय पौधे या साग-सब्जियों के पत्ते इनके कुल शारीरिक भार का 20-25% दिया जा सकता है। यदि तालाब में शैवाल प्रस्फुटन हो तो आहार व खाद देना बंद कर देना चाहिए। प्रजनन काल के पूर्व भी आहार कम कर दिया जाना चाहिए ताकि मछलियों में वसा का जमाव न हो जाए जो इनकी जनन क्षमता को प्रभावित करता है।

आधुनिक अनुसंधान कार्यों से ज्ञात हुआ है कि मछलियों की जननेन्द्रियों की परिपक्वता के दौरान बड़ी मात्रा में स्थूल व सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है, अतः इन्हें विटामिन, खनिज व प्रोटीनयुक्त आहार दिया जाना चाहिए। प्रजनकों के आहार में चावल की भूसी 30%, मूँगफली की खली 35%, भुना हुआ सोयाबीन मील 20%, फिश मील 10%, खनिज व विटामिन 2%, साग-सब्जियों का तेल 2.7% तथा फिश आयल 0.3% होना लाभदायक है।

प्रेरित प्रजनन तकनीक

इस तकनीक को हाइपोफाइजेशन भी कहा जाता है, और अब तक यही एक तकनीक है जिसके द्वारा बड़ी मात्रा में भारतीय व चाइनीज कार्प मछलियों के बीज उत्पन्न किया जा सकता है। इस तकनीक के अंतर्गत पीयुष ग्रन्थियों का एकत्रीकरण व संरक्षण, परिपक्व प्रजनकों का चयन, सुई लगाने के लिए सही मात्रा का निर्धारण, पीयुष ग्रन्थियों के सार की तैयारी, अंडों को इक्ट्ठा करना, इनका प्रस्फुटन, प्रजनकों का रख -रखाव आदि पहलू हैं। प्रेरित प्रजनन में तापमान व जलवायु का विशेष महत्व होता है।

पीयुष ग्रन्थि : मत्स्य पियूष ग्रन्थि

यह ग्रन्थि छोटी मुलायम एवं सफेद रंग की होती है। यह चपटी, गोल या लम्बी भी हो सकती है परन्तु कार्प मछलियों में सामान्यतः यह गोल ही होती है। यह मस्तिष्क के पृष्ट भाग में होती है। मत्स्य पीयुष ग्रन्थि में अनेक प्रकार के हार्मोन होते हैं जो मछलियों को अंड जनन के लिए प्रेरित करतें हैं।

पीयुष ग्रन्थियों का एकत्रीकरण व संरक्षण

परिपक्व व स्वस्थ मछलियों से पीयुष ग्रन्थियों को एकत्रित किया जाना चाहिए। परिपक्व मछली के सिर के ऊपरी भाग को काट कर पीयूष ग्रंथियाँ एकत्रित की जाती हैं। स्काल्प को हटाने के बाद मस्तिष्क को पश्च भाग से काटकर अग्र भाग तक उठाया जाता है तो ग्रंथि एक कैविटी में दिखाई पड़ती है जो एक पतली झिल्ली से ढकी होती है। इसे सावधानी से निकाल कर अल्कोहल में संरक्षित किया जाता है।

नर व मादा मछलियों की पहचान एवं प्रजनकों का चयन

प्रेरित प्रजनन में उपयुक्त प्रजनकों का चयन एवं सुई लगाने की मात्रा का सही निर्धारण ही सफलता की कुंजी है। ड्रेग नेट की सहायता से प्रजनक मछलियों को निकाल कर स्वस्थ एवं पूर्ण रूप से परिपक्व मछलियों का चयन किया जाता है। नर मछलियों के अंस पख का पृष्ट भाग खुरदरा तथा मादा मछलियों में मुलायम होता है। परिपक्व नर मछलियों के उदर पर हल्का सा दबाव डालने पर गुदद्वार से सफ़ेद रंग का द्रव मत्स्य शुक्र निकलता है जबकि मादा मछलियों का उदर उभरा हुआ गोल, मुलायम तथा इनका गुदद्वार फूला हुआ लाल रंग का होता है। ग्रास कार्प मछलियों का उदर अत्यधिक आहार के कारण भी फूला हुआ रहता है, अतः इनके अंडे कैथिटर की सहायता से निकाल कर देख लेना बेहतर होगा। प्रजनकों में सिल्वर कार्प के गोल व हल्के नीले रंग के अंडे तथा ग्रास कार्प में संतरे या लाल रंग के अंडे बेहतर होते हैं। चयनित प्रजनकों को अलग-अलग तौल लिया जाना चाहिए।

सुई लगाने के लिए पियूष ग्रन्थि सार का निर्धारण

पीयुष ग्रन्थि सार की मात्रा का निर्धारण चयनित प्रजनकों की लैंगिक परिपक्वता तथा जलीय तापमान व वर्षा जैसी पर्यावरणीय अवस्थाओं पर नर्भर करता है। पूर्ण

रूप से परिपक्व मछलियाँ ठंडा व वर्षा के दिन में एक ही डोज से प्रजनन कर जाती हैं जब कि गर्म या बादल छाये हुए रहने पर दो डोज की आवश्यकता पड़ती है। मादा मछलियों को पियूष ग्रन्थियों के सार के दो डोज की आवश्यकता होती है और नर मछलियों को एक ही डोज मादा मछली की दूसरी डोज के वक्त दिया जाता है। भारतीय मेजर कार्प की मादा मछलियों को प्राथमिक डोज 2-3 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. शारीरिक भार के दर से दिया जाता है और दूसरी डोज 4-6 घंटे बाद 5-8 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. शारीरिक भार के दर से दिया जाता है। इस दूसरे डोज के वक्त नर मछली को एक ही डोज 2-3 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. शारीरिक भार के दर से दिया जाता है। चायनीज कार्प मछलियों के संदर्भ में अधिक डोज ज्यादा कारगर साबित हुई है।

सुई देने के लिए ग्रन्थियों के सार की तैयारी

आवश्यक सार का निर्धारण हो जाने के बाद आवश्यक मात्रा में ग्रन्थियों को अल्कोहल से निकाल कर एक सूखे ब्लाटिंग पेपर पर रख लिया जाता है और कुछ देर बाद इन्हें ग्लास टिश्यू होमोजीनैजर में पीस लिया जाता है। इस पिसे हुए सार में आवश्यक मात्रा में आसुत जल मिलाकर सेन्ट्रीफ्यूज मशीन में फिर पीसा जाता है। इस तरह बना हुआ सार सुई देने के लिए तैयार है।

प्रजनक मछलियों को सुई लगाना

प्रजनक मछली को हैंड नेट की सहायता से निकाल कर एक नरम गद्दे पर रखकर सुई लगाई जाती है। सुई मछली के पुच्छ वृंत क्षेत्र (caudal peduncle) में या पृष्ठ पख (dorsal fin) के नीचे लगाया जाता है।

अंडजनन

सुई लगाई गई प्रजनकों को मच्छरदानी कपड़े से बने आयताकार प्रजनन हापा ($2 \times 12 \times 1$ मी.) में छोड़ दिया जाता है जिसका एक ओर थोड़ा सा खुला रहता है और जिससे प्रजनकों को अन्दर डाला या निकाला जा सकता है। भारतीय मेजर कार्प मछलियाँ सामान्यतः 3-6 घटों में अंडे देती हैं जिन्हें नर मछलियों द्वारा निषेचित किया जाता है।

अंडों का स्फुटन

भारतीय मेजर कार्प मछलियों के अंडो में चिपचिपाहट नहीं होती और ये तलमज्जी होते

हैं। निषेचन के दौरान ये काफी फूल जाते हैं। इन अंडों को प्रजनन हापा से निकाल कर हैचिंग हापा में समान रूप से फैला दिया जाता है। हैचिंग हापा कपड़े से बनी दो दीवारों वाली एक आयाताकार डिब्बे जैसी होती है जिसका ऊपरी ढक्कन नही होता है। भीतरी हापा जो थोड़ी छोटी होती है (1.5 × 0.75 × 0.50 मी.) मच्छरदानी कपड़े से बनी गोल छिद्रों वाली होती है। बाहरी हापा मारकिन कपड़े की बनी (2.0 × 1.0 × 1.0 मी.) होती है। भीतरी हापा में लगभग 75,000 से 100,000 अंडे बिछा दिए जाते हैं। निषेचन से 14-20 घंटों में स्फुटन होता है। तापमान का स्तर इस अवधि को घटा या बड़ा सकता है। स्फुटन के बाद ये अंडज भीतरी हापा से बाहरी हापा में चली आती हैं, इसके बाद सावधानीपूर्वक भीतरी हापा को निकाल दिया जाता है और इन्हें इसी प्रकार तीन दिनों तक रख दिया जाता है। इन्हें जीरा कहा जाता है। तीसरे दिन इन जीरों को निकाल कर नर्सरी तालाब में संग्रहित किया जा सकता है।

प्रजनन एवं स्फुटन के लिए उपयुक्त वातावरण

भारतीय व चाईनीज कार्प मछलियों के प्रेरित प्रजनन में वातावरण का विशेष महत्व है अतः इस पर ध्यान देना आवश्यक है। मछलियों को प्रजनन हेतु प्रेरित करने में जलीय तापमान की विशेष भूमिका है। कार्प मछलियाँ 24° से 33^0 से.ग्रे. तापमान में भी प्रजनन करती हैं परन्तु 27° से.ग्रे. अनुकूलतम है। प्रजनन के लिए ठण्डा व वर्षा का दिन उपयुक्त होता है।

प्रेरित प्रजनन के लिए एक आसान पद्धति

कार्प मछलियों का प्रेरित प्रजनन रिफरीजेटर, केमिकल बैंलेस, टिश्यू होमोजीनैजर, सेन्ट्रीफ्यूज आदि यंत्रों के बिना भी करवाया जा सकता है। ऐसी स्थिति में मत्स्य पालक को एक बड़ी मछली से ग्रन्थि निकाल कर पत्थर या पोर्सलीन की बनी ऊखल में पीसकर इसे स्वच्छ जल में मिलाकर सार तैयार कर लेना चाहिए। मात्रा का निर्धारण भी काफी आसान है। मादा मछली को प्राथमिक डोज के रूप में एक पूर्ण ग्रन्थि से बनी सार का आधा भाग दिया जाना चाहिए। मादा मछली को दूसरी डोज के रूप में एक पूरी ग्रन्थि से बनी सार को सुई द्वारा लगानी चाहिए। नर मछलियों को कम डोज की आवश्यकता होती है अतः एक ग्रन्थि से बनी सार 4 नर मछलियों को दिया जा सकता है। इस परिकलन के अनुसार नर और मादा मछलियों के लिए क्रमशः 0.5 और 1.5 ग्रन्थियों की आवश्यकता होती है। यह पूरा कार्य प्रजनन से कुछ पहले ही करना चाहिए अन्यथा कुछ समय रखने पर सार खराब हो सकता है।

विदेशी कार्प मछलियों का प्रेरित प्रजनन

भारत में उत्पन्न एवं उपलब्ध मेजर एवं माइनर दोनों ही प्रकार के.कार्प मछलियों को देशी कार्प प्रजातियाँ कहते हैं। इनमें से *कतला कतला, लेबियो रोहिता, एल. बाटा, सिरहिनस मृगाला, पुनटियस टिक्टो, पुनटियस सराना* आदि महत्वपूर्ण हैं। ये प्रजातियाँ प्राकृतिक जलीय संसाधनों में जैसे नदी, जलाशय, झील, बील एवं तालाबों में सहजता से प्रजनन करने में सक्षम हैं एवं अपना पूरा जीवन चक्र इन्हीं संसाधनों में पूर्ण करती हैं। इनकी परिपक्वता एवं प्रजनन ऋतु विशेष है एवं प्रत्येक वर्ष एक या दो बार प्रजनन करती हैं।

कुछ ऐसी कार्प प्रजातियाँ भी हैं जो विदेशी मूल की हैं जिन्हें भारतीय जलीय संसाधनों में लाया गया है ताकि देश के मत्स्य उत्पादन को बढ़ाया जा सके, इन्हें सामान्यतः विदेशी कार्प मछलियाँ कहा जाता हैं। इस तरह विदेशी प्रजातियों का देश में लाना कृषि उत्पादों एवं पशुधन संवर्द्धन में आम है। विदेशी कार्प मछलियों में कॉमन कार्प या *सिप्रिनस कार्पियो,* सिल्वर कार्प या *एच.मोलीट्रिक्स* और ग्रास कार्प या *सी.आइडिला* कई दशक पहले इस देश में लाया गया है। ये सभी प्रजातियाँ देश की जलीय संसाधनों में पूरी तरह स्थापित हो गई हैं एवं मत्स्य उत्पादन में काफी सहायक प्रमाणित हुई हैं। ये सभी प्रजातियाँ तालाब में उच्च विकास दर एवं पूर्ण परिपक्वता दर्शाती हैं। सिल्वर कार्प, ग्रास कार्प और कॉमन कार्प को अन्य अंतर्स्थलीय जलीय संसाधनों में भी पाला जा सकता हैं। ये प्रजातियाँ मूलतः नदीय पर्यावरण से संबंधित है। अतः जब इन्हें तालाब या टैंक जैसे स्थिर जल निकायों में पाला जाता है तो ये परिपक्वता तो प्राप्त करती हैं परन्तु प्रतिबंधित अवस्था में प्रजनन नहीं करती हैं। अतः इनके प्रजनन के लिए कृत्रिम रुप से नदीय पारिस्थितिकी उत्पन्न किया जाता है एवं इनकी अंतःस्त्रावी तंत्र को प्रेरित किया जाता है। प्राकृतिक प्रजनन छोड़कर अन्य तकनीकों से कराये जाने वाले प्रजनन को प्रेरित प्रजनन या *इंड्यूस्ड ब्रिडिंग* कहा जाता है। पालन योग्य मत्स्य प्रजातियों के उन्नत किस्म के बीज प्राप्त करने हेतु प्रेरित प्रजनन तकनीक का विकास किया गया है। उन्नत किस्म के मत्स्य बीजों को प्राप्त करने के लिए यह प्रणाली काफी महत्वपूर्ण है। इस तकनीक द्वारा उन क्षेत्रों में भी मत्स्य उत्पादन संभव हो सका है जहाँ प्राकृतिक रुप से मत्स्य बीज एकत्रीकरण संभव नहीं है।

प्रेरित प्रजनन पद्धति

हाईपोफाईजेशन

पीयूष ग्रंथी सार को सूई द्वारा लगाकर प्रजनन कराने की तकनीक को प्रेरित प्रजनन या *हाईपोफाईजेशन* कहा जाता है। पीयूष ग्रंथी से अनेक प्रकार के हार्मोन निकलते हैं जिनमें से गोनाडोट्रापिन प्रजनन के लिए अति महत्वपूर्ण है। पीयूष ग्रंथियों की बढ़ती हुई मांग की समस्या को कुछ सीमा तक HCG लाकर समाधान किया गया है जो बाजार में आसानी से उपलब्ध होती है। अब HCG कम कीमतों के कारण काफी लोकप्रिय हो रही है। पीयूष होर्मोन सार एवं HCG का मिश्रण का सही अनुपात में दिये जाने पर मत्स्य प्रजनन सफलतापूर्वक होती है।

पीयूष ग्रंन्थियों का एकत्रीकरण

परिपक्व मछली की खोपड़ी के ऊपरी भाग को काट कर पीयूष ग्रंथियाँ एकत्रित की जाती हैं। स्काल्प को हटाने के बाद मस्तिष्क को पश्च भाग से काटकर अग्र भाग तक उठाया जाता है तो ग्रंथि एक कैविटी में दिखाई पड़ती है जो एक पतली झिल्ली से ढकी होती है। इसे सावधानी से निकाल कर अल्कोहल में संरक्षित किया जाता है।

पीयूष ग्रंथियों का संरक्षण

मछलियों से ग्रंथियाँ निकालते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिए की यह जल के सम्पर्क में न आये क्योंकि ग्रंथियों के हार्मोन जल में घुल जाते हैं। पीयूष ग्रंथियों के संरक्षण की तीन पद्धतियाँ हैं-

1. शुद्ध अल्कोहल में संरक्षण
2. एसिटोन में संरक्षण
3. त्वरित प्रशीतन द्वारा संरक्षित

प्रजनक मछलियों की आयु, आमाप एवं परिपक्वता

कॉमन कार्प

कॉमन कार्प मछलियों में परिपक्वता छः मास की आयु में एवं 300 ग्राम से 1 किलो के आमाप के दौरान देखी जाती है। यदि उचित जलीय तापमान एवं सबस्ट्रेट उपलब्ध हो तो हारमोन इंजेक्शन के बिना ही यह प्रजाति प्रजनन कर सकती है।

इसके अंडे प्राकृतिक रुप से चिपचिपाहट वाले होते हैं एवं तैरनेवाले या जलमग्न पौधों से चिपक जाते हैं। सामान्यतः प्रजनन वर्ष में दो बार होता है– पहली बार जून-जुलाई में दूसरी बार दिसम्बर-जनवरी में देखा जाता है। हारमोन की एक सुई अंडों के परिमाण को काफी बढ़ा सकती है।

सिल्वर कार्प

सिल्वर कार्प प्रजातियों में एक वर्ष की पालन अवधि के उपरान्त परिपक्वता आती है एवं नर मछलियाँ 800 ग्रा. से 1.5 कि.ग्रा. तथा मादा मछलियाँ 1.0 कि.ग्रा. से 2.5 कि.ग्रा. की हो जाती हैं। इनकी परिपक्वता ग्रीष्म काल के प्रारम्भ से मानसून के प्रारम्भ तक देखी जा सकती है। नर मछली के गुदद्वार के दोनों तरफ हल्का सा दबाव डालने पर सामान्य रुप से मत्स्य शुक्र निकलती है एवं मादा मछलियों का उदर फूला हुआ एवं गुदद्वार हल्का गुलाबी या लाल रंग का हो जाता है।

ग्रास कार्प

ग्रास कार्प मछलियों में परिपक्वता डेढ़ वर्ष से दो वर्ष की आयु तथा 1.5 कि.ग्रा. से 3.0 कि.ग्रा. शारीरिक भार के दौरान पायी जाती है। परिपक्वता में यह सिल्वर कॉर्प के समान ही होती है परन्तु परिपक्व मादा मछलियों के चयन में कुछ सावधानी बरतनी आवश्यक है। ये मछलियाँ जलीय घास एवं वनस्पतियाँ अधिक मात्रा में खाती है जिससे इनका उदर हमेशा फूला हुआ रहता है। ग्रीष्म काल के प्रारम्भ से मानसून के प्रारम्भ तक की अवधि में यह प्रजाति पूर्ण परिपक्व होती हैं।

प्रेरित प्रजनन की सफलता के लिए मछलियों की पूर्ण परिपक्वता एवं सही प्रजनकों का चयन अति महत्वपूर्ण है।

प्रजनकों का उचित रख-रखाव

मत्स्य फार्म से प्राप्त प्रजनक मछलियों से अच्छे परिणाम मिलते हैं। प्रजनक मछलियाँ तालाब व नदीय संसाधनों से भी प्राप्त किए जा सकते हैं। प्रजनकों को इन जलीय संसाधनों से नवम्बर से मार्च के दौरान प्राप्त करना श्रेयस्कर है। प्रजनक मछलियों को अधिकतम 2000-2500 कि.ग्रा. प्रति हे. के दर से संग्रहित किया जाए। कॉमन कार्प एवं सिल्वर कार्प प्रजातियों को मुख्य रुप से संग्रहित किए गए तालाब में कार्बनिक खाद के साथ सिंगल सुपर फास्फेट (17-20 कि.ग्रा. प्रति हे.) को प्रत्येक 15 दिनों में एक बार दिया जा सकता है। ग्रास कार्प को मुख्य रुप

से संग्रहित किए गए तालाबों को नियमित रुप से खाद देने की आवश्यकता नहीं है। इस तालाब में शीतकाल के दौरान निमग्न जलीय वनस्पतियों को एवं वसन्त के प्रारम्भ में जलीय घास (कुल शारीरिक वजन का 1-2%) डालना चाहिए जिससे जननग्रन्थियों का तेजी से विकास हो। तेल निकाली गयी चावल की भूसी तथा खली को 6:4 अनुपात में मछलियों के कुल शारीरिक वजन का 1-2% प्रारम्भिक दशा में दिया जाता है। इसके बाद की अवस्था में फिश मिल (30% प्रोटीन) खली के बदले दिया जाना बेहतर है। प्रजनन अवधि से एक दो माह पहले नर एवं मादा प्रजनकों को अलग अलग तालाबों में रखा जाना चाहिए एवं नियमित अंतराल में इनकी अनुवांशिक दशा एवं परिपक्वता की जाँच करना चाहिए।

प्रजनन तकनीक

चयनित प्रजनक मछलियों को फिश फॉर्म में लगे हापा या मत्स्य बीज हैचरियों में छः से सात घंटे तक रखा जाए। इसके बाद प्रत्येक मछली का भार तौल लिया जाना चाहिए। अब मछलियाँ सुई लेने के लिए तैयार हैं।

सुई लगाने के लिए मात्रा का निर्धारण

पीयूष ग्रन्थि सार की मात्रा का परिकलन मछली के प्रत्येक कि.ग्रा. शारीरिक वजन के अनुसार मिलीग्रामों में किया जाता है। पीयूष ग्रंथि सार या इसे HCG के साथ मिलाकर देने की मात्रा, प्रजनकों की लैंगिक परिपक्वता तथा कुछ सीमा तक पर्यावरणीय स्थितियों पर आधारित होती है। कॉमन कार्प प्रजाति में मादा मछलियों के शारीरिक भार के प्रत्येक कि.ग्रा. पर 2-5 मि.ग्रा. पीयूष ग्रंथि सार की एक सुई देने पर अंडजनन हो जाता है, जबकि सिल्वर कार्प और ग्रास कार्प नर मछलियों में 2 मि.ग्रा. प्रति किलो शारीरिक वजन की मात्रा ही काफी होती है। मादा मछलियों को पहली सुई 2-3 मि.ग्रा. प्रति किलो शारीरिक भार की लगानी चाहिए एवं दूसरी सुई 5-8 मि.ग्रा. छः घंटे बाद देने पर बेहतर परिणाम प्राप्त होते हैं। नर मछलियों को एक ही सुई 2-3 मि.ग्रा. प्रति किलो शारीरिक भार का तब दिया जाना चाहिए जब मादा मछलियों को दूसरी सुई लगायी जाती है। सुई लगाने के बाद नर एवं मादा मछलियों को (दो नर मछलियाँ/एक मादा मछली) एक वृत्ताकार अंडजनन पूल में छोड़ दिया जाना चाहिए जो किसी हैचरी में रखा गया हो। सिल्वर कार्प एवं ग्रास कार्प मछलियों के मामले में स्वतंत्र रुप से अंडजनन होती है। परन्तु अंड निषेचन प्रतिशत काफी कम होती है। अतः मादा मछलियों के उदर को हल्के से दबाकर अंडजनन करवाया जाना चाहिए एवं इन्हें नर मछलियों के मत्स्य शुक्र से मिलाया

जाना चाहिए। इन्हे पूरी तरह मिलाने के बाद स्वच्छ जल से इन्हें कई बार धोना चाहिए। इसके उपरान्त अंडों को हैचरी में रखा जाना चाहिए। इस अवस्था में काफी सतर्क रहने की आवश्यकता है। जल का तापमान 20-25^0 से.ग्रे. होना आवश्यक है।

पीयूष ग्रंथियों के सार की तैयारी

ग्रंथियों के सार की आवश्यक मात्रा का निर्धारण किया जाना चाहिए। ग्रंथियों को संरक्षित स्थान से निकाल कर फिल्टर पेपर पर कुछ देर तक रखना चाहिए। इसके उपरान्त स्वच्छ जल या हल्के नमकीन जल (0.3%) में डुबो कर नरम कंर लिया जाना चाहिए। इसके बाद इन ग्रंथियों को सेंट्रीफ्यूज मशीन में तरल बना कर, इस तरल को स्वच्छ जल में आवश्यक मात्रा तक घोल लिया जाना चाहिए।

प्रजनक मछली का शारीरिक भार	प्राथमिक डोज	अंतिम डोज
1.0 से 2.0 कि.ग्रा.	0.50cc प्रति मछली	0.75cc प्रति मछली
2.0 कि.ग्रा. से अधिक	0.75cc प्रति मछली	1.50cc प्रति मछली

सुई लगाने की विधि

मछलियों में पीयूष ग्रंथि सार की सुई सामान्यतः अंतःपेशियों में पुच्छ वृंतक (caudal peduncle) क्षेत्र में पार्श्व रेखा के उपर या नीचे लगाया जाता है। मछलियों के शरीर पर स्केल उठाकर सुई मांस पेशियों में लगायी जाती है। सुई लगाने के लिए 2 मि.ली. वाली सिरेंज का उपयोग सुविधाजनक होती है। सिरेंज की सुई की लम्बाई प्रजनक मछली की लम्बाई के अनुरूप होनी चाहिए।

प्रजनन पर्यावरण

हाईपोफाईजेशन द्वारा अंडजनन की सफलता जलीय एवं वातावरणीय परिस्थितियों पर आधारित होती है। इसमें तापमान की महत्वपूर्ण भूमिका है। यह देखा गया है कि प्रजनन के लिए 22-28^0 से.ग्रे. का तापमान काफी अनुकूल होता है। यद्यपि इससे कम तापमान में भी अंडजनन करवाया जा सकता है। अव्यवस्थित परिस्थितियों में अंडजनन एवं स्फुटन संतोषजनक नहीं होता है। स्वच्छ जल जिसमें 5-9 मि.ग्रा प्रति लीटर ऑक्सीजन हो, को वृत्ताकार रुप में संचालित करना अंडजनन, उच्च निषेचन एवं अंडजों की प्राप्ति में सहायक है।

अंडजनन एवं स्फुटन

अंडजनन हेतु एक वृत्ताकार सीमेन्ट पूल (8 मीटर व्यास वाली) का चयन किया जाता है जिसमें 50 घनमीटर जल भरा जा सकता है। पूल की निचली सतह मध्य भाग की ओर ढला हुआ होता है जहाँ (10 से.मी. व्यास वाली) निकासी पाइप लगा होता है और यह पाइप इनक्यूबेशन टैंक से लगा होता है। अंडजनन पूल में पानी का पाइप इस तरह लगा होता है कि पानी नदीय प्रवाह जैसा परिचालित होता है। जब मछलियाँ ऊपर की ओर आती हैं तो पूल में लगे वाल्व को खोल कर जल प्रवाह को वृत्ताकार रूप दिया जाता है। जल प्रवाह की गति को 30 मीटर प्रति मिनट रखा जाता है। मादा मछलियों से प्राप्त निषेचित अंडे स्वच्छ एवं आक्सीजन से परिपूर्ण वृत्ताकार स्फुटन टैंक में रखा जाता है। जीरों या अंडजों को स्फुटन टैंक के जल निकास द्वार से एकत्रित किया जा सकता है।

उपसंहार

हमारे जलीय परितंत्रों में विदेशी कार्प मछलियों के पालन पर सन्देह व्यक्त किया जाता है परन्तु यह निश्चित है कि जलीय परितंत्रों में आवास हेतु ये विदेशी प्रजातियाँ देशी प्रजातियों से स्पर्धा करती हैं। विदेशी प्रजातियों के पालन से देश की मत्स्य उपज में काफी वृद्धि हुई है। देश की जनता के लिए यह सस्ती प्रोटीन लाभदायक एवं आवश्यक है, जिसके लिए इन विदेशी कार्प मछलियों का पालन महत्वपूर्ण है।

***

कॉमन कार्प का नियंत्रित प्रजनन

एम. के. बन्दोपाध्याय, वरिष्ठ वैज्ञानिक
केन्द्रीय अन्तर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर

कॉमन कार्प

क्लास -	*टेलियोस्टोमी*
आर्डर -	*साइप्रिनीफार्मिस*
फैमिली -	*साइप्रिनीडी*
जीनस -	*साइप्रिनस*
स्पीसीज -	*काप्रियो*

सामान्य नाम

कामन कार्प, सामान्य सफर, अमरीकन रोहु, चाईनीज कार्प, स्केल कार्प आदि ।

सामान्य लक्षण

उठा हुआ मुख, उदर में ज्यादा गोलाई, होंठ पतले उभारदार, शुकर की तरह। पृष्ठ पख शरीर के पिछले हिस्से तक पहुँचता है। शरीर का रंग ऊपरी भाग में लाल और नीचे चाँदी की तरह। दूसरे प्रजातियों में शरीर का अधिकतर भाग चाँदी रंग का होता है।

कॉमन कार्प की जैविकी

यह एशिया महाद्वीप की मछली है। शीतल और गर्म जल दोनों में ही यह मछली पायी जाती है। कम ऑक्सीजन वाले जलाशयों में भी यह रह सकती है। भारत में यह मछली पहली बार श्रीलंका से सन् 1939 में लायी गयी थी, फिर दूसरी बार सन् 1957 में बैंकाक से।

पहाड़ी क्षेत्रों में एक वर्ष तथा गर्म क्षेत्रों में यह मछली 6 से 8 महीने में परिपक्व हो जाती है। बैंकाक स्ट्रेन का पेट फुला एवं उभरा हुआ होता है, जबकि जर्मन स्ट्रेन का पेट उभारदार नहीं होता है। जलाशयों में कॉमन कार्प वर्ष भर प्रजनन करता है। इसके अंडे चिपकने वाले तथा पीले रंग के होते हैं। इस मछली

की अण्डजनन क्षमता 1.0-1.5 लाख/किलो होती है। कॉमन कार्प एक सर्वभक्षी मछली है। तालाब में उपलब्ध जीवाणुओं तथा सड़े गले वनस्पतियों एवं मलबों का भक्षण करती है।

प्रजनकों की देख-भाल

प्रजनन समय से 2 या 3 महीने पूर्व प्रजनकों को प्रजनक तालाब में संचित किया जाता है। 1 से 2 कि.ग्रा वजन की नर एवं मादा प्रजनकों को अलग-अलग तालाबों में 1500 से 2000 कि.ग्रा./ हे. की दर से संग्रहित किया जाता है। भोजन के रूप में चावल की भूसी और सरसों या मूंगफली की खली 1:1 के अनुपात में मिलाकर प्रतिदिन प्रजनकों को इनके शारीरिक भार का 1 से 2 प्रतिशत की दर से दिया जाता है। भोजन को भिगोकर गोला बनाया जाता है जिसे किनारों पर रख दिया जाता है। तालाब में समय-समय पर जाल चला कर प्रजनकों के स्वास्थ्य और यौन परिपक्वता की जाँच की जाती है।

प्रजनन मछलियों का चयन

नर और मादा प्रजनन मछलियों का चयन निम्नलिखित लक्षणों के आधार पर किया जाता है।

नर	मादा
• पेक्टोरल पख खुरदुरा होता है।	• पेक्टोरल पख मुलायम होता है।
• पेट दबाने से सफेद दूध जैसा मिल्ट निकलता है।	• पेट दबाने से परिपूर्ण अंडे बाहर आते हैं।
• जननांग धँसा हुआ प्रतीत होता है।	• जननांग उभरा हुआ और लालिमायुक्त होता है।
• पेट साधारण रूप से फूला हुआ होता है ।	• पेट मुलायम और पर्याप्त रूप से फूला हुआ होता है।

नियंत्रित प्रजनन तकनीक

भारत की समतल भूमि में कॉमन कार्प वर्ष में दो बार प्राकृतिक रूप से प्रजनन करती है - जुलाई से अगस्त तथा दिसम्बर से जनवरी के दौरान।

कॉमन कार्प के नियंत्रित प्रजनन के लिए कपड़े से बने हुए चौकोर हापा को बांस की सहायता से तालाब में लगाया जाता है। 1 किलोग्राम मादा मछली के लिए 2x4x1 मी. आकार की हापा तथा 5 से 6 किलोग्राम मछली के लिए 4x2x1 मी. हापा उपयुक्त होता है। इससे ज्यादा वजन होने से कॉमन कार्प का नियंत्रित प्रजनन छोटे तालाब अथवा सीमेंट के बने टैंक में भी किया जा सकता है। प्रजनकों के एक जोड़े में भार के अनुसार 1:1 नर एवं मादा रखा जाता है।

कॉमन कार्प अंडे के चिपकनेवाले गुण के कारण, प्रजनन हापा में जलीय पौधे जैसे हाइड्रिला, नाजा, कारा तथा जलकुंभी आदिका अंडे इकट्ठे करने के लिए उपयोग किया जाता है। इसके अलावा अंडों को निकालने के लिए पाठ व नारियल की रस्सी एवं प्लास्टिक का भी उपयोग किया जाता है। इस प्रकार की सामग्री का भार मादा प्रजनकों के भार के अनुसार होता है, जैसे 1 से 2 कि.ग्रा. मादा के लिए 2 कि.ग्रा. सामग्री, 3 से 4 कि.ग्रा. मादा मछलियों के लिए 5 किलोग्राम।

कॉमन कार्प के नियंत्रित प्रजनन प्राकृतिक प्रक्रिया से होती है। प्रजनन हापा में प्रजनकों को रखने के 10 से 12 घंटों बाद मछलियाँ प्रजनन करती हैं। मादा मछली अंडे छोड़ती है तथा नर मछली उसके ऊपर मिन्ट डालती हैं। अंडे जलीय पौधों आदि पर चिपक जाते हैं और धीरे-धीरे फूलने लगते हैं।

हैचिंग प्रक्रिया

अंडे से बच्चे निकलने की प्रक्रिया को हैंचिंग कहते हैं। हैचिंग के लिए अंडे चिपके हुए जलीय पौधों व अन्य सामग्री को हैचिंग हापा में रख दिया जाता है। कपड़े से बने हुये 2 × 1 × 1 मी. हैचिंग हापा में 1 कि.ग्रा. अंडे चिपका हुआ सामग्री रखा जाता है। अंडों का निषेचन जल के 28^0 से 31^0 सें.ग्रे. तापमान में 48 घंटों के अंदर होता है और अंडों से हैचलिंग अथवा शिशुमीन निकलती हैं। अंडों से शिशुमीन निकलने के बाद जलीय पौधों व अन्य सामग्री को बाहर निकाल दिया जाता है। हैचिंग के समय से 72 घंटे तक शिशुमीन को हैचिंग हापा में ही रखा जाता है।

इस प्रकार प्राप्त जीरों को किसी तैयार नर्सरी तालाब में 10 लाख/हे. की दर से संग्रहित किया जाता है, जहाँ ये जीरें 15 से 20 दिनों में फ्राइ का रूप धारण कर लेती हैं।

नीचे दिये गये चित्रों में नर व मादा कॉमन कार्प की पहचान और अंडों से संबंधित चित्र दिये गये हैं।

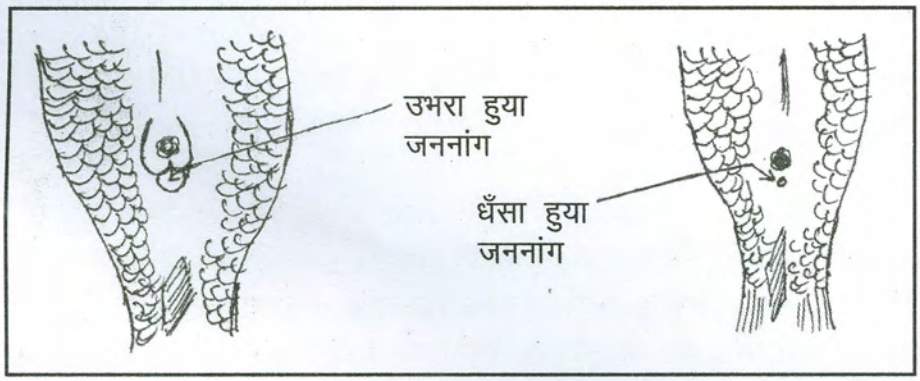

मादा *नर*

चित्र - 1 मादा और नर कामन कॉर्प की पहचान

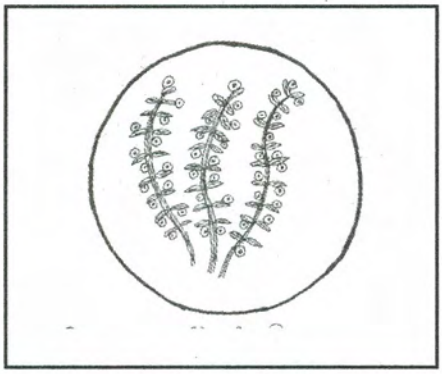

चित्र - 2 जलीय पौधे में चिपके हुये अंडे

कार्प मछलियों का बंध प्रजनन

अमिताभ घोष, पूर्व प्रधान वैज्ञानिक
केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर

भूमिका

मत्स्य पालन की सफलता विशेषकर उन्नत किस्म के मत्स्य बीजों की प्राप्ति पर निर्भर करती है। प्राकृतिक जलीय संसाधनों से एकत्रित कार्प मछलियों के बीजों से आवश्यक मांग की आपूर्ति नहीं होती है। अतः उन्नत किस्म के बीजों की प्राप्ति के लिए बंध प्रजनन तकनीक एक महत्वपूर्ण साधन है। भारतीय मेजर कार्प मछलियाँ सामान्यतः प्रतिरोधित जल क्षेत्र में प्रजनन नहीं कर पाती हैं। नदीय़ स्त्रोतों से मत्स्य बीजों का एकत्रीकरण दशकों पुरानी पद्धति है। इस पद्धति में सबसे बड़ी समस्या है कि व्यवसायिक तौर पर महत्वपूर्ण कार्प बीजों के साथ अनेक प्रकार के अवांछित मत्स्य प्रजातियों के बीजों का भी मिश्रण हो जाता है। प्राकृतिक जल क्षेत्रों से एकत्रित मत्स्य जीरों का परिवहन तथा प्रजनन स्थल या अंडजनन क्षेत्र का पता लगाना भी महत्वपूर्ण समस्या है। बंगाल के मत्स्य पालक/मत्स्य बीज उत्पादकों ने एक देशी पद्धति का विकास किया है जिसके अंतर्गत विभिन्न आकार व आमाप वाले उथले जल निकायों में निम्न गति से प्रवाहित नदीय परिस्थितियाँ उत्पन्न कर मेजर कार्प मछलियों को सफलता से प्रजनन करवाते हैं एवं उन्नत किस्म के कार्प बीजों का उत्पादन करते हैं। बंगाल के बांकुड़ा, मिदनापुर तथा चिटगाँव (अब बंगलादेश में) के अलावा मध्य प्रदेश के छतरपुर जिले में भी इस प्रकार के बंध टैंक उपलब्ध हैं। बंगला बंध जो ड्राइ बंध का ही एक लघु रूप है, का उपयोग पिछले तीन दशकों से किया जा रहा है।

बंध किसे कहते हैं ?

बंध विशेष प्रकार के उथले गर्त या अपरभूमि के ढलान पर बनी बारहमासी/मौसमी टैंक हैं जिनमें मानसून के दौरान बाढ़ एवं धीमी गति से प्रवाहित नदीय परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाती हैं। जल ग्रहण क्षेत्र के ढलान को *धाल* तथा बंध के सीमान्त उथले क्षेत्र को *मोन्स* कहा जाता है जो अंडजनन स्थल की भूमिका निभाती है। भारी वर्षापात के बाद वर्षापात जल ढलान की ओर प्रवाहित हो कर बंध में भर जाता है, बंध भर जाने के बाद शेष जल केनालों द्वारा बाहर बह जाता है। इन केनालों को

बालन या *बुलन* कहा जाता है। इस बालन के मुख पर बाँस या नॉयलान के बने जाल लगाये जाते हैं ताकि प्रजनक मछलियाँ बाहर न जा सके।

बंध के प्रकार

बंध मूलतः दो प्रकार के होते हैं

ड्राइ बंध — ये जल निकाय मौसमी होते हैं। मानसून महिनों को छोड़कर शेष समय ये सूखे हुए होते हैं, इसी मानसून के दौरान कार्प मछलियाँ भी प्रजनन करती हैं।

वेट बंध — ये जल निकाय बारहमासी होते हैं।

ड्राइबंध - ये जल निकाय बारहमासी एवं विभिन्न आकार एवं आमाप के होते हैं जिसके तीन ओर मिट्टी के तटबंद बने होते हैं जिसमें जलग्रहण क्षेत्र से प्रवाहित वर्षा जल एकत्रित होता है एवं भारी वर्षपात के बाद बाढ़ सी स्थिति बनती है। ढलान के उपरी भाग में एक जल निकाय (जिसे जलाशय कहते है) होता है जहाँ वर्ष भर जलग्रहण क्षेत्र से जल एकत्रित होता है । मध्य प्रदेश में बंध एवं जलग्रहण क्षेत्र का अनुपात 1:15 है जबकि पश्चिम बंगाल में 1 : 5 अनुपात को उपयुक्त माना जाता है।

जलाशय की जलग्रहण क्षमता एवं आमाप पर बंधों की संख्या निर्भर करती है । इस प्रकार के बंध पश्चिम बंगाल के मिदनापुर और बांकुड़ा जिलों में तथा नौगाँव में और मध्य प्रदेश के छतरपुर जिले में पाये जाते है।

बंगला बंध - ड्राइ बंध का ही एक विशेष प्रकार है जो किसी भी उपयुक्त स्थान पर बनाया जा सकता है। बंध ऐसे स्थान में होता है जहाँ पर्याप्त मात्रा में प्राकृतिक जल उपलब्ध हो सके। ये मानव निर्मित जल निकाय का निचला तल सीमेन्ट से बना होता है एवं जल निकासी की पर्याप्त सुविधाएँ बनी होती हैं। टैंक देशांतरीय ढाल वाली होता है जिसकी अत्यधिक गहराई पर निकासी द्वार बने होते हैं ताकि आवश्यकता पड़ने पर टैंक से पूरे जल की निकासी हो सके। बंध का ढाल इस प्रकार बना होता है जिससे जल प्रवाह धीमी गति से होता है। टैंक के उथले क्षेत्र में जल की गहराई 30-50 से.मी. तथा अत्यधिक गहराई वाले क्षेत्र में 1 मीटर होता है। बंध में ऐसी सुविधा बनी होती है जिससे पाईपों की सहायता से पानी का छिड़काव हो सके । टैंक के उथले क्षेत्र में 10-15 से.मी. बालू की परत बिछाई

जाती है ताकि कार्प मछलियों के लिए प्रजनन व अंडजनन स्थल के रुप में उपयोगी हो।

वेट बंध - यह एक विशेष बारहमासी जल निकाय है जो एक वृहत्त जलग्रहण क्षेत्र के बेस में बनी होती है जिसमें मानसून के दौरान जल एकत्रित होकर बाढ़ जैसी स्थिति बनती है। इसमें जल प्रवेश द्वार *धाल* की ओर और निकासी द्वार इसकी उल्टी ओर बनी होती है। निकास द्वार पर बाँस के बनी फेन्सिंग लगी होती है ताकि प्रजनक मछलियाँ बाहर न आ पायें। बाँस से बनी फेन्सिंग जिसे *चिरा* भी कहते है, जल निकासी को नियमित करने में भी उपयोगी होता है।

बंध प्रजनन के लिए कार्प प्रजनक मछलियों का प्रबन्धन

भारतीय मेजर कार्प एवं चाइनीज कार्प के उन्नत किस्म के मत्स्य बीज प्राप्त करने के लिए स्वस्थ एवं उपयुक्त प्रजनक मछलियों की आवश्यकता होती है। अतः प्रजनक मछलियों के जननग्रंथियों का विकास तथा बंध परिस्थितियों में अंडजों का उत्पादन एवं इनके स्फुटन तथा उच्च अतिजीविता दर एवं स्वास्थ्य के लिए उचित प्रबन्धन की आवश्यकता है।

प्रजनक मछलियों का स्त्रोत

भारतीय मेजर कार्प प्रजनक मछलियों को नदी, जलाशय आदि से या उन तालाबों से प्राप्त किया जा सकता है, जहाँ इनका व्यवसायिक पालन होता है। सिल्वर कार्प एवं ग्रास कार्प की प्रजनक मछलियों कोउन तालाबों से ही प्राप्त किया जा सकता है। संग्रहण तालाबों से बड़ी संख्या में परिपक्व मछलियों को प्राप्त करना सरल होता है। संग्रहण तालाबों में पले परिपक्व मछलियाँ प्रजनन एवं पियूष ग्रंथियों के एकत्रिकरण के लिए उपयोगी हैं। वेट बंधों में प्रजनन के लिए प्रजनक मछलियों का पालन भी किया जा सकता है या बाहरी स्त्रोतों से भी लाया जा सकता है। परन्तु ड्राइ बंध के लिए प्रजनकों को बाहरी स्त्रोतों से ही लाना पड़ता है।

प्रजनक मछलियों का चयन

संग्रहण तालाबों से प्राप्त या विवृत्त जल क्षेत्रों से एकत्रित भारतीय मेजर कार्प के स्वस्थ एवं परिपक्व मछलियों को प्रजनकों के रुप में विकास किया जाता है। परिपक्वता प्राप्त कर रही मछलियाँ जिनका शारीरिक भार 1 कि.ग्रा. से अधिक है एवं जिनकी अंडाशय परिपक्वता प्रथम या दूसरे चरण में होती है, उन मछलियों को

नवम्बर से जनवरी के दौरान एकत्रित कर लिया जाता है। एकत्रित मछलियों को प्रजनन एवं पियूष ग्रंथियों के लिए अलग अलग छाँट लिया जाता है। मछली की अवस्था की पहचान इसकी मांसलता से होती है। इस विषय पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि मछलियाँ रोगमुक्त हों। एक ही नर एवं मादा मछलियों की जोड़ी से उत्पन्न मछलियों को प्रजनन के लिए बार बार नहीं चुना जाना चाहिए । अतः प्रजनक मछलियों को विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त करना उपयुक्त होगा। भारतीय मेजर कार्प मछलियाँ एक वर्ष से अधिक होने पर परिपक्वता प्राप्त करती हैं। अतः प्रजनक मछलियाँ दो या तीन वर्ष आयु वाली होना बेहतर होता है।

प्रजनक मत्स्य तालाबों का प्रबंधन

प्रजनक मछलियों की संख्या एवं आमाप बंध विशेष की कुल प्रजनकों की मांग पर निर्भर करता है। प्रजनक मत्स्य तालाब का क्षेत्रफल 0.2 से 2.5 हेक्टयर के बीच होता है। यह तालाब आयताकार एवं इसकी गहराई एक मीटर से डेढ मीटर होती है। तालाब में जल प्रवेश एवं जल निकासी की सुविधाएँ आवश्यक है। तालाब के ऊपरी सतह पर जल छिड़काव करने की भी सुविधा होनी चाहिए जिससे घुले आक्सीजन के स्तर को बढ़ाया जा सके एवं तापमान को कम किया जा सके। तालाब के छोरों पर शेड जैसा लगाया जाना चाहिए ताकि दिन के समय अत्यधिक तापमान होने पर मछलियाँ इस शेड के नीचे आश्रय ले सके। यह भी सुविधा होनी चाहिए की आवश्यकता पड़ने पर इस तालाब में ठंडे जल का प्रवेश कराया जा सके। तालाब में कार्बनिक व अकार्बनिक उर्वरक दिया जाना है ताकि प्लवकों का घनत्व 0.5 से 1.5 मि.ली. प्रति 50 लीटर बना रहे। कतला मछली मूलतः प्राणि-प्लवकों को आहार के रुप में ग्रहण करती है। अतः इस मछली से संग्रहित प्रजनक मत्स्य तालाबों में पर्याप्त मात्रा में प्राणि-प्लवकों का होना आवश्यक है (50 मि.ली./1000 ली की दर झिंगरन एवं पुलिन, 1985 द्वारा प्रस्तावित)। प्रजनक मत्स्य तालाब जलीय स्थूल वनस्पतियों से मुक्त रहना चाहिए। तालाब से अपतृण मछलियों के उन्मूलन के लिए महुए की खली का उपयोग 200-250 पी.पी.एम. की दर से किया जाना चाहिए, यदि ये मछलियाँ तालाब में रहें तो प्रजनक मछलियों से आहार एवं स्थान के लिए स्पर्धा करेगीं। इस कार्य के लिए टी सीड केक, डैरिस के मूलों का चूर्ण आदि का भी उपयोग किया जा सकता है। महुए की खली के उपयोग के दो तीन सप्ताह बाद तालाब में चूना 150-200 कि.ग्रा. की दर से दिया जाना चाहिए। तालाब में चूना देने पर जल के पी.एच.को नियमित किया जा सकता है। तालाब में गोबर 5000-10000 कि.ग्रा./हे. की दर से आवश्यकतानुसार किस्तों में

दिया जा सकता है। जल एवं मृदा के परीक्षण से ही उर्वरकों के प्रकार एवं मात्रा का निर्धारण किया जाता है। प्रजनक मत्स्य तालाबों की प्रबन्धन अवधि 4-5 माह होती है।

प्रजनकों का संग्रहण

तालाब में प्रजनकों को 1000-3000 कि.ग्रा. प्रति हे. की दर से संग्रहित किया जाता है। मेजर कार्प मछलियों को सामान्यतः कतला : रोहूः मृगल को 4 : 3 : 3 के अनुपात में संग्रहित किया जाता है। यदि *कालबसु* मछलियों को भी संग्रहित किया जाता है तो निचली सतह पर आहार लेने वाली प्रजातियों को इस प्रकार बाँटा जाता है कि मृगल 1.5ः कालबसु 1.5। भारतीय मेजर कार्प, सिल्वर कार्प एवं ग्रास कार्प एक साथ संग्रहित किया जा सकता है। परन्तु कतला एवं सिल्वर कार्प को एक साथ संग्रहण नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि इससे कतला की परिपक्वता प्रभावित हो सकती है। ग्रास कार्प प्रजनक मछलियों को आहार के रुप में जलीय खरपतवारों को दिया जाना चाहिए। अतः यह बेहतर होगा कि प्रत्येक प्रजाति के प्रजनक मछलियों को अलग–अलग तालाबों में संग्रहित करें, इसमें भी नर एवं मादा मछलियों को अलग अलग। यदि तालाबों की कमी हो तो भारतीय मेजर कार्प रोहू एवं मृगल के साथ सिल्वर एवं ग्रास कार्प प्रजनकों को भी संग्रहित किया जा सकता है।

सम्पूरक आहार

तालाब में उपलब्ध प्राकृतिक आहार के अलावा प्रजनकों के अच्छे स्वास्थ्य के लिए सम्पूरक आहार भी दिया जाना आवश्यक है। सम्पूरक आहार के रुप में मूँगफली की खली और चावल की भूँसी को 1:1 के अनुपात में मछलियों की कुल शारीरिक भार का 2-5 प्रतिशत दिया जाना चाहिए। अनेक बार कतला की मादा मछलियाँ पूरी तरह परिपक्व दिखाई पड़ती हैं परन्तु वास्तव में इसकी जनन ग्रंथियाँ परिपक्व न होकर इसके शरीर में वसा की अधिकता होती है। अतः कतला मछलियों को दिये जाने वाला आहार वसारहित होना चाहिए। सामान्यतः प्रति दिन मछलियों की कुल शारीरिक भार का 2-5 प्रतिशत आहार चावल या गेहू की भूसी, सोयाबीन मील और खली सामान अनुपात में मिलाकर देने पर जनन ग्रंथियों का अच्छा विकास होता है। ग्रास कार्प मछलियों को आहार के रुप में प्रति दिन *हाइड्रिला, नाजास* और *डक्विड* (*लेम्ना* प्रजाति) उनके कुल शारीरिक भार का 30-35 प्रतिशत दिया जाना चाहिए। सिल्वर कार्प वाले तालाब में कार्बनिक खाद प्रति 10 दिनों में एक बार 1.5 से 2

टन प्रति हे. की दर से दिये जाने की सलाह की जाती है। क्योंकि भारतीय मेजर एवं चाइनीज कार्प मछलियों को दो बार प्रजनन कराया जा सकता है, अतः पहली प्रजनन के उपरान्त इन्हें उपयुक्त पोषक तत्व एवं देखभाल करना चाहिए। यदि शैवाल प्रस्फुटन हो तो कृत्रिम आहार बंद कर दिया जाना चाहिए। यदि अत्यधिक वसा का जमाव देखा जाय तो भी आहार अस्थायी तौर पर बंद कर दिया जाना चाहिए। विभिन्न मत्स्यकर्मियों द्वारा भिन्न भिन्न स्तर के प्रोटीनयुक्त आहार की सलाह की गयी है। झिंगरन और पुलिन के अनुसार 28-35 प्रतिशत प्रोटीन वाली आहार प्रजनक मछलियों के लिए लाभदायक है।

प्रजनक मछलियों की उपज

प्रजनन के लिए नर एवं मादा मछलियों को निकालकर अलग अलग हापाओं में रखा जाता है ताकि वांछित प्रजनकों का चयन किया जा सकें। नर एवं मादा मछलियों को आसानी से पहचाना जा सकता है क्योंकि नर मछलियों का अंसपख खुरदरा एवं मादा मछलियों का मुलायम होता है। पूर्ण रुप से परिपक्व नर मछली के पेट पर हल्का सा दबाब डालने पर मत्स्य शुक्र निकलता है एवं मादा मछलियों का उदर फूला, गोल एवं नर्म होता है तथा इनकी गुदद्वार भी फूला हुआ होता है। फूला हुआ गुदद्वार गुलाबी रंग में होती है। ग्रास कार्प एवं सिल्वर कार्प मादा मछलियों के अंडों की अवस्था जानने के लिए एक रबर की नली द्वारा निकाल कर देखा जाता है। जो मछलियाँ पूर्ण रुप से परिपक्वता प्राप्त नहीं की हैं उन्हें वापस तालाबों में छोड़ दिया जाता है।

बंध प्रजनन तकनीक एवं अंडों का एकत्रीकरण

प्रजनन कार्य से पहले प्रजनक मछलियों को बंध में (ड्राइ या वेट) में छोड़ दिया जाता है। सामान्यतः नर एवं मादा मछलियों की संख्या का अनुपात 2:1 (1:1 शारीरिक वजन के अनुसार) होता है, परन्तु यह अनुपात प्रजनन के दौरान प्रजाति विशेष की प्रजनक मछलियों की उपलब्धता पर निर्भर करता है। जब प्रजनक मछलियाँ बाहर से लायी जाती है तो इन्हें नये वातावरण में लगभग बारह घंटे तक रखा जाता है ताकि ये मछलियाँ नये पर्यावरण में अपने को अनुकूल बना सके। इसके बाद पीयूष ग्रंथिसार की एक सुई 5-10 मि.ग्रा. प्रति किलो शारीरिक भार की दर से नर एवं मादा मछलियों के अंतःपेशियों में लगाया जाता है। कुल प्रजनक मछलियों के 10-20 प्रतिशत मछलियों को ही सुई लगाई जाती है। मछलियों को यह सुई शाम या रात के समय दिया जाता है। जब जलाशय से पानी बंध में प्रवाहित

होता है एवं बाढ़ की स्थिति उत्पन्न होती है तो सुई लगाने के 4-6 घंटे बाद बंध प्रजनन प्रारम्भ होता है एवं 3-4 घंटे तक चलता है। इस तकनीक से सभी प्रजनक मछलियों से सम्पूर्ण रुप से अंडे प्राप्त किये जा सकते है, चाहे सुई दी गई मछली हो या नहीं। इस प्रकार के प्रजनन क्रिया को *सिम्पेथेटिक ब्रिडिंग* कहा जाता है। कार्प मछलियों में निषेचन बाहरी तौर पर होता है। अंडों के निषेचन के बाद इनके जनक नर व मादा मछलियाँ अलग हो जाती है। अंडे उथले क्षेत्र में बिछी हुई मच्छरदानी जैसे कपड़े पर जमा हो जाते हैं। ये अंडे हल्के सफेद रंग के होते है एवं एक मोटी परत जैसी जमा हो जाते हैं । अब इन अंडों को मच्छरदानी कपड़े की सहायता से समेट कर छोटी छोटी मिट्टी के गड्डों में(पिट), जिन्हें *छाबास* कहते है, स्थानांतरित कर दिया जाता है। ये छाबास का आमाप 2.5-3.0' × 2' × 1' होता है। प्रत्येक में 50 हजार से 75 हजार अंडे रखे जाते हैं। यदि संभव हो तो इनमें हल्की गति से जल का संचालन किया जा सकता है। निषेचन से 12-24 घंटों में अंडों का स्फुटन होता है। स्फुटन का प्रतिशत 25 होता है, सीमेंट हैचरियों में अतिजीविता दर 90% तक हो सकता है। अंडजों को कपड़े की सहायता से बड़े (पिट) मे स्थानांतरित किया जाता है। यदि हापा लगाने की सुविधा हो तो अंडज हापा के भीतरी दीवार पार कर बाहरी दीवार में पहुँच जाती हैं।

नर्सरी तालाबों का प्रबन्धन

सुकुमार साहा, तकनीकी अधिकारी
केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर

भूमिका

कार्प मछलियों के कोमल जीरें (स्पॉन) अण्डे से निकलने के तीन दिन बाद बाहरी भोजन लेना प्रारम्भ करते हैं। इस समय इनकी बढ़ोत्तरी एवं सुरक्षा के लिए उचित वातावरण तथा समुचित भोजन की विशेष आवश्यकता होती है। अच्छी तरह तैयार किए हुए नर्सरी तालाबों में 5-6 मि.मी. के जीरें 2-3 सप्ताह में बढ़ कर 25-30 मि. मी. के पोनों (फ्राई) का रूप ले लेती हैं।

नर्सरी तालाब लगभग 0.02-0.05 हेक्टर का होना चाहिए तथा इसमें 1.0-1.5 मी. का जल स्तर होना चाहिए। ऐसे तालाब जो गर्मियों में सूख जाते हैं, इस कार्य के लिए अधिक उपयुक्त होते हैं। बड़े सीमेंट के नादों को भी नर्सरी के रुप में प्रयोग किया जा सकता है।

1. नर्सरी तालाबों से अनावश्यक पौधों को उखाड़ कर फेंकना अति आवश्यक है। यह कार्य ग्रीष्मकाल में आसानी से किया जा सकता है।

2. इन तालाबों से सभी प्रकार की अवांछित मछलियों का पूर्ण उन्मूलन भी आवश्यक है। यह कार्य तालाब का सारा पानी निकाल कर एवं उसे करीब एक सप्ताह तक सूखा छोड़कर किया जा सकता है। यदि तालाब का सारा जल निकालना संभव न हो तो मछलियों के उन्मूलन के लिए विषैले पदार्थों का प्रयोग आवश्यक है। यूं तो मछलियों को मारने वाले विषैले पदार्थ अनेक हैं, परन्तु महुए की खली (2000-2500 कि.ग्रा./हे./मी. की दर से) इस कार्य के लिए सबसे अधिक उपयुक्त है एवं अधिकतर प्रयोग में लाई जाती है। इससे मारी गई मछलियाँ मनुष्य के खाने योग्य होती है। इसकी विषाक्तता पानी में 15-20 दिनों तक रहती है। विष देने का कार्य वर्षाकाल के पूर्व जब तालाब में जल सबसे कम रहता है, करना आर्थिक दृष्टि से लाभदायक है। महुए की खली के उचित परिमाण को जल में भिंगोकर तालाब में छिड़कना

चाहिए। तत्पश्चात् तालाब में जाल चलाना चाहिए ताकि यह अच्छी तरह जल में घुल जाए।

3. मछलियों के उन्मूलन के करीब दो सप्ताह बाद तालाब में 250-300 किग्रा./हे. की दर से साधारण चूना (क्विक लाईम) देना चाहिए। चूना तालाब को कीटाणुओं से मुक्त करता है एवं दिए हुए खाद का पूर्ण रुप से इस्तेमाल होने में सहायता करता है।

4. तालाब में मत्स्य आहार प्लवकों की उपज को बढ़ाने के लिए कच्चा गोबर 10,000 किग्रा/हे. की दर से तालाब में चारों तरफ छींट देना चाहिए। यह कार्य जीरा डालने के अनुमानित दिन से लगभग 15 दिन पहले करना चाहिए। जिन तालाबों में मछली उन्मूलन के लिए महुए की खली का प्रयोग किया गया हो उनमें गोबर का परिमाण आधा कर दिया जाता है।

5. नर्सरी तालाब में जीरे डालने से पूर्व पानी के कीड़ों का उन्मूलन आवश्यक है। यह कार्य जीरा डालने वाले दिन या उससे एक दिन पूर्व करना चाहिए। इस कार्य के लिए गर्म पानी में सस्ते साबुन (56 कि.ग्रा./हे.) का घोल तथा किसी वनस्पति तेल (18 कि.ग्रा/हे) के मिश्रण का तालाब की सतह पर छिड़काव करना चाहिए। छिड़काव प्रायः तड़के सुबह, जब तेज हवा न चल रही हो करना चाहिए ताकि तालाब की पूरी सतह पर तेल की एक परत बन सके। इस क्रिया से पानी के सारे कीड़े 1-2 घंटे के अन्दर मर जाते हैं। कीड़ों के उन्मूलन के लिए 80-100 ली./हे. की दर से किरासिन तेल का छिड़काव भी किया जा सकता है।

6. तत्पश्चात्, प्रातःकाल या शाम के समय नर्सरी में जीरा संग्रहण करना चाहिए। जीरा संग्रहण की उचित दर 25-35 लाख प्रति हेक्टर है।

7. मछलियों के बढ़ते हुए बच्चों को समुचित मात्रा में आहार मिलने के लिए प्राकृतिक भोजन के साथ-साथ अतिरिक्त भोजन भी देना आवश्यक है। इसके लिए महीन पिसी और छानी हुई सरसों या मूँगफली की खली और चावल की भूसी को बराबर मात्रा में मिला कर प्रयोग किया जाता है। यह अतिरिक्त भोजन प्रति 1 लाख जीरों के लिए पहले 5 दिनों में 0.56 कि.ग्रा/दिन और अगले 7 दिनों में 1.12 कि.ग्रा/दिन के दर से देना चाहिए। भोजन को सुबह के वक्त पानी के सतह पर छिडक देना चाहिए।

8. नर्सरी तालाब से फ्राई निकालने का कार्य जीरा संग्रहण के दो सप्ताह बाद किया जाता है। यदि आकाश में बादल छाए हुए हो या कड़कती धूप हो तो यह कार्य नहीं किया जाना चाहिए। तालाब से फ्राई निकालने के एक दिन पहले अतिरिक्त भोजन देना बंद करना चाहिए। यदि फ्राई दूर तक ले जाना हो तो उन्हें हापों में 3-6 घंटे तक रख कर स्थिरावस्था (कन्डीशनिंग) कर लेना चाहिए ।

नर्सरी तालाब प्रबन्धन आर्थिक दृष्टि से काफी लाभप्रद है। इस पद्वति से जीरों के अनुपात में लगभग 60% फ्राई पाने की आशा की जाती है। अनुमानतः 0.1 हे. की नर्सरी तालाब में 2000 रुपए का व्यय आता है और शुद्व लाभ 3400 रुपया (मूलधन पर 170%) होता है।

रियरिंग तालाबों का प्रबन्धन

सुकुमार साहा, तकनीकी अधिकारी
केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर

भूमिका

मत्स्य पालन के पूरे चक्र में कई चरण होते हैं - जैसे हाईपोफेजेशन द्वारा मत्स्य बीज उत्पादन या प्राकृतिक स्त्रोतों से मत्स्य बीज एकत्रीकरण, लार्वा को पोना अवस्था तक एवं पोना अवस्था से अंगुलिकाओं तक एवं अंगुलिकाओं से खाने योग्य आमाप तक पालन आदि। लार्वा का पालन भारत में काफी पुरानी प्रथा है। मत्स्य पालकों द्वारा अपने अनुभव के आधार पर विकसित तकनीक का स्थान अब वैज्ञानिक तकनीक ने ले लिया है। अब पूरे देश में तीन चरण वाली वैज्ञानिक प्रणाली प्रचलित है जैसे प्रथम चरण-नर्सरी तालाबों में तीन दिन आयु वाले जीरों का पालन, दूसरा चरण- पोनों को अंगुलिकाओ तक पालन, तृतीय चरण-अंगुलिकाओं को खाने योग्य आमाप तक पालन। सभी कार्प प्रजातियों के लार्वा की पालन विधि एक जैसी ही है। अतः इस पर एक ही शीर्ष के अंतर्गत विचार किया जा रहा है।

पोनों का अंगुलिकाओं तक पालन

नर्सरी तालाबों में पाली गयी पोना मछलियाँ बड़े तालाबों में संग्रहित करने के लिए काफी छोटी होती है क्योंकि बड़े तालाबों में बड़ी परभक्षी मछलियाँ भी होती हैं। अतः इन पोनों को रियरिंग तालाबों में अंगुलिकाओं के आकार तक (100-150 मि.मी.) पाला जाना आवश्यक है। रियरिंग तालाब नर्सरी तालाब से कुछ बड़ी 0.08 से 0.01 हे. क्षेत्रफल वाली होती है। ग्रामीण क्षेत्रों के रियरिंग तालाबों में विभिन्न आमाप के पोना मछलियों को पाला जाता है। रियरिंग तालाबों का प्रबन्धन लगभग नर्सरी तालाबों का प्रबन्धन जैसा ही है। प्राथमिक तौर पर जलीय वनस्पतियों का नियंत्रण, अवांछित मछलियों का उन्मूलन और कार्बनिक खाद देना आदि कार्य है। चूँकि रियरिंग तालाबों में बड़े पोनों को संग्रहित किया जाता है अतः जलीय कीड़े मकोड़ों का उन्मूलन आवश्यक नहीं है। नर्सरी तालाबों के विपरीत रियरिंग तालाबों में मत्स्य बीजों का पालन विभिन्न प्रजातियों के वैज्ञानिक मिश्रण से किया जाता है। यदि मत्स्य बीज नदीय स्त्रोतों से प्राप्त किया गया हो तो इन्हें प्रजाति अनुसार छाँट लिया जाना चाहिए।

कतला, रोहू और मृगल के पोनों को कॉमन कार्प या सिल्वर कार्प पोनों के साथ संग्रहित किया जा सकता है, परन्तु अधिक प्रजातियों का मिश्रण वांछनीय नहीं है। चार प्रजातियों के मिश्रण को अधिक सफलता मिलती है।

जलीय खरपतवार

तालाब/टैंक में खरपतवारों का अत्यधिक जमाव मत्स्य पालन के लिए काफी नुकसानदायक है क्योंकि ये खरपतवार पोषक तत्वों का उपभोग करती है जिससे जल निकाय की उत्पादन क्षमता घट जाती है। इसके आलावा ये खरपतवार अपतृण मछलियों को आश्रय देती है एवं मत्स्यन कार्यों में अवरोध तथा सूर्य की किरणों को निचली सतह तक पहुँचने में बाधा उत्पन्न करती है जिससे पारिस्थितिकीय संतुलन प्रभावित होता है।

मात्स्यिकी जल क्षेत्रों में सामान्यतः तैरने वाले, जलमग्न एवं जड़ वाले खरपतवार पाये जाते हैं। जलकुम्भी (इकोरनिया प्रजाति), *वाटर लेट्टूस* (पिस्टिया प्रजाति), *वोल्फिया, लेम्ना, अजोला, इपोमिया* प्रजाति और *जुसिया, सेल्विनिया* आदि सामान्य खरपतवार हैं। जलमग्न खरपतवारों में *हाईड्रिला, नाजास, सेरोटोफाइलम, पोटोमोजिटोन, वालिसनेरिया, चारा* और *उतरिकिउलेरिया* आदि सामान्य है। जल सतह के ऊपर रहने वाले खरपतवारों में वाटर लिलिस (*निमफिया*), लोटस (*एनलम्बु*) और *निमफोइडस* प्रमुख हैं।

शैवाल प्रस्फुटन

मात्स्यिकी जल क्षेत्रों में शैवाल प्रस्फुटन काफी खतरनाक होता है जो कभी-कभी तालाब की पूरी मछलियों को मार देती है। *माइक्रोसिस्टिस* और *एनाबेना* शैवाल प्रस्फुटन कार्बनिक खाद से प्रदूषित तालाबों में वर्ष भर रहता है, जिससे कभी कभी अचानक ऑक्सीजन की कमी से मछलियों की मृत्यु हो जाती है।

खरपतवारों का नियंत्रण

मैनुअल

खरपतवारों को मजदूरों की सहायता से भी साफ करवाया जा सकता है।

रसायन

बाजार में अनेक प्रकार के खरपतवार नाशक रसायन उपलब्ध है जिनमें से 2,4-डी जिनमें *ग्रामोक्सोन 40, सोडियम आर्सिनेट, डाइक्लोबिनियोल, सिमाजाइन* और *अमोनिया* महत्वपूर्ण है। इनमें से 2,4 डी जो एक हारमोन खरपतवार नाशक है काफी सस्ती एवं प्रभावकारी है। जलमग्न खरपतवारों के नियंत्रण के लिए *सोडियम आर्सिनाइट* 4-6 पी.पी.एम. के दर से उपयोग करने पर काफी प्रभावकारी है परन्तु यह रसायन मानव, पशुधन एवं मत्स्य आहार जीवों के लिए काफी हानिकारक है जिससे मत्स्य उत्पादन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। जलमग्न खरपतवारों के उन्मूलन के लिए *अमोनिया* भी काफी प्रभावकारी है। तालाबों से जलमग्न खरपतवार उन्मूलन के लिए *अमोनिया* 225 कि.ग्रा./हे. जलक्षेत्र जिसकी गहराई 1.5 मीटर हो, पर्याप्त है। *सीमाजाइन* 5 पी.पी.एम. के दर तथा *ग्रामोक्सोन* 2 पी.पी.एम. के दर से उपयोग करना भी जलमग्न खरपतवारों के उन्मूलन में प्रभावकारी है। इन सब रासायनों में *अमोनिया* काफी सस्ती एवं लाभदायक है।

जैविक नियंत्रण

यह देखा गया है कि कुछ जलमग्न खरपतवार जैसे *हाइड्रिला, नाजास* आदि के नियंत्रण के लिए ग्रास कार्प मछलियों का पालन भी लाभदायक है। ग्रास कार्प मछलियाँ इन जलीय खरपतवारों को आहार के रुप में लेती है जिससे इनका तेजी से विकास होता है और इसका अनुकूल प्रभाव मत्स्य उत्पादन पर भी पड़ता है। ग्रास कार्प मछलियाँ अपनी शारीरिक भार का 50% वजन का खरपतवार प्रति दिन खा लेती है। इन कार्प मछलियों की आहार लेने की क्षमता उपलब्ध खरपतवारों के प्रकार एवं जलीय तापमान पर निर्भर करता है। ग्रास कार्प की 300-400 मछलियाँ जिनका शारीरिक भार 400-600 ग्राम प्रति मछली है,1 हेक्टर जलीय क्षेत्र से खरपतवार एक माह में पूरी तरह साफ करने में सक्षम हैं।

शैवाल प्रस्फुटन का नियंत्रण

शैवाल प्रस्फुटन जैविक रुप से या फिर मानव जनित पद्धतियों पूरी तरह नियंत्रित करना संभव नहीं है। *मैक्रोसिस्टिस* और *एनाबेना* का प्रस्फुटन तथा नील हरित शैवाल का नियंत्रण *सीमाजाइन* रासायन के उपयोग से किया जा सकता है। एक हेक्टर जल क्षेत्र के लिए 6-10 कि.ग्रा. *सीमाजाइन* की आवश्यकता होती है।

परभक्षी एवं अपतृण मछलियों का नियंत्रण

तालाबों या टैंकों में सामान्यतः परभक्षी एवं अपतृण मछलियाँ मौजूद रहती हैं, जैसे *वोलागो अट्टू, नोटोपटिरस, हेट्रोपनेस्टस फोसिलिस, क्लारियस बेट्राकस, एम्बलिफेरिंगोडान मोला, पंकटियस सराना, चन्ना* प्रजाति, *ओम्पोक* प्रजाति, *ग्लासगोबियस* आदि। परभक्षी मछलियाँ मत्स्य पालन के लिए हानिकारक है क्योंकि ये मछलियाँ न केवल आहार व स्थान के लिए स्पर्धा करती है बल्कि संग्रहित छोटी मछलियों को खा जाती हैं। अधिकतर परभक्षी मछलियों की संख्या बड़ी तेजी से वृद्धि होती है जो संग्रहित मछलियों से स्पर्धा करती रहती है। इन परभक्षी मछलियों में मरेल समूह के *चन्ना मारोलियस, सी.स्ट्रियाटस* तथा मीठे जल का शार्क *वोलागो अट्टू* तथा अन्य शिंगटी मछलियाँ काफी खतरनाक होती है। इन प्रजातियों का मत्स्य पालन तालाबों में मौजूद रहना संग्रहित मछलियों के लिए खतरनाक साबित हो सकता है। अतः यह आवश्यक है कि संग्रहण से पूर्व इन परभक्षी मछलियों का पूर्ण उन्मूलन किया जाए।

उन्मूलन पद्धतियाँ

इन परभक्षी एवं अपतृण मछलियों के उन्मूलन की सरल पद्धति है, तालाब से पूरी तरह जल निकाल लेना। मत्स्य विष के प्रयोग से भी इन अवांछित मछलियों का उन्मूलन किया जा सकता है। यद्यपि बाजार में अनेक प्रकार के मत्स्य विष उपलब्ध हैं जो वनस्पति मूल एवं रसायन मूल के है, इनमें से वनस्पति मूल के विष अधिक लोकप्रिय हैं। इन वनस्पति मूल विषैले पदार्थों में डैरीस के मूल का चूर्ण (रिटीन ऑन 5%) तथा महुए की खली (*बासिया लेटिफोलिया*) काफी महत्वपूर्ण है। डैरीस चूर्ण का (रोटीनान 5%) 6-10 पी.पी.एम. की दर से उपयोग परभक्षी एवं अपतृण मछलियों के उन्मूलन में काफी प्रभावकारी है। घोंघे, मेढक और कीड़े मकोड़े के उन्मूलन भी इस रोटीनान उपचार से हो जाता है।

परभक्षी एवं अपतृण मछलियों के उन्मूलन में महुए की खली भी एक प्रभावशाली मत्स्य विष है। महुए की खली विष के रुप में मछलियों को मारती है, साथ ही तालाब में ऊर्वरक के रुप में मत्स्य आहार जीवों के उत्पादन में सहायक होती है, परन्तु इसका उपयोग काफी बड़ी मात्रा में (200-250 पी.पी.एम.)करना पड़ता है।

तालाबों का उर्वरीकरण

तालाब में उर्वरक देने का मुख्य उद्देश्य है इसमें आवश्यक पोषक तत्वों में वृद्धि करना तथा प्राकृतिक मत्स्य आहार को बढ़ाना। भारतीय उपमहाद्वीप में मत्स्य

तालाबों में गोबर को कार्बनिक खाद के रुप में उपयोग किया जाता है। तालाब में खाद की आवश्यकता की जानकारी के लिए निचली सतह की मृदा का परीक्षण अति आवश्यक है।

तालाब में चूना देना

तालाब में चूने का महत्व सर्वविदित है। आवश्यक पाषक तत्वों को देने के अलावा चूने में और भी कई महत्वपूर्ण गुण हैं, जैसे- यह मृदा एवं जल की अम्लीयता को दूर करती है, एक स्वस्थ पी.एच. पद्धति को स्थापित करती है तथा कार्बनिक पदार्थों के अपघटन में तेजी लाती है। तालाबों में ग्राउण्ड लाइम स्टोन ($CaCO_3$), स्लेक लाइम ($CaOH_2$) तथा क्विक लाइम (CaO)का उपयोग किया जाता है। तालाब में मछलियों के संग्रहित करने के उपरान्त अंतिम दोनों प्रकार के चूने का उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। चूने की मात्रा का निर्धारण तालाब की मृदा पर आधारित होती है। यदि तालाब का पी.एच. 6.5-7.0 हो तो 200 कि.ग्रा./हे. चूना दिया जाए।

कार्बनिक खाद का उपयोग

तालाब में पर्याप्त मात्रा में मत्स्य आहार के रुप में सूक्ष्म जीवों को बनाए रखने के लिए खाद का देना आवश्यक है। अतः आसानी से उपलब्ध एवं उपयुक्त खाद है गोबर। इस खाद को सम्पूर्ण उर्वरक माना जाता है क्योंकि इसमें तीनों प्रकार के मुख्य पोषक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाशियम उपलब्ध है। इसके अलावा इसमें कार्बनिक कार्बन सूक्ष्म जीव आदि भी मौजूद हैं।

संग्रहण से 15 दिन पूर्व तालाब में गोबर 10,000 कि.ग्रा./हे. की दर से दिया जाना चाहिए। इस खाद को यदि किस्तों में डाला जाय तो बेहतर परिणाम हो सकते है। इससे प्लवकों का उत्पादन होता है। इस खाद का उपयोग करते समय यह ध्यान देना आवश्यक है कि तालाब में कहीं ऑक्सीजन की कमी न हो जाए।

संग्रहण

तालाब में कार्बनिक उर्वरक देने के 15 दिन पश्चात् मत्स्य पोनों को संग्रहित किया जा सकता है। मिश्रित कार्प मत्स्य पालन सर्वप्रथम रियरिंग तालाबों से भी प्रारम्भ होता है। तालाब में 2 लाख प्रति हेक्टयर की दर से संग्रहित पोना 3 महीने की अवधि में वांछित अंगुलिकाओं के आकार तक विकास करती हैं। अच्छी तरह प्रबन्धन किये गये तालाब में इनकी अतिजीविता दर 80 प्रतिशत होती है।

संग्रहण के पश्चात् प्रबन्धन कार्य

संग्रहित मत्स्य बीजों की कुल शारीरिक भार का 2 से 3 प्रतिशत सम्पूरक आहार दिया जाता है। संग्रहण के 15 दिन पश्चात तालाबों में अकार्बनिक उर्वरको को दिया जाना चाहिए जैसे-यूरिया और सुपरफास्फेट 60 कि.ग्रा./हे. की दर से। एक महीने के पश्चात् तालाब में दोबारा कार्बनिक खाद (2000 कि.ग्रा./हे.) दिया जाना चाहिए। तदोपरान्त प्रत्येक 15 दिनों में बारी बारी से कार्बनिक व अकार्बनिक खाद देते रहना चाहिए।

उपज प्राप्ति

तीन महीने की पालन अवधि के उपरान्त संग्रहित पोना मछलियाँ अंगुलिकाओं की अवस्था तक पहुँच जाती हैं, जिन्हें तालाबों से निकालकर मत्स्य पालन तालाबों तक ले जाया जाता है।

मत्स्य पालन हेतु मत्स्य बीज परिवहन

एस. आर. दास, पूर्व प्रधान वैज्ञानिक
केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर

भूमिका

मछलियों के छोटे-छोटे बच्चों का उत्पादन, एकत्रीकरण एवं मत्स्य उत्पादन क्षेत्र तक उनका परिवहन मत्स्य पालन का अहम् पहलू है। विभिन्न फसलों का उत्पादन कार्य बीज से प्रारम्भ होता है, उसी प्रकार मत्स्य पालन कार्य भी मछलियों के छोटे-छोटे बच्चों से प्रारम्भ होता है जिन्हें सामान्यतः मत्स्य बीज कहा जाता है। प्रारम्भिक काल में इन मत्स्य बीजों को प्राकृतिक स्त्रोतों से एकत्रित किया जाता था, विशेषकर नदीय स्त्रोतों से। मत्स्य पालन के लिए उपयुक्त मत्स्य बीजों पर ही ध्यान दिया जाता था एवं इन बीजों को एकत्रित कर परिवहन करने की व्यवस्था को ग्रामीण स्तर पर ही विकसित किया गया। भारत में मत्स्य उत्पादन हेतु भारतीय मेजर कार्प मछलियों (रोहू, कतला और म्रिगल) के छोटे-छोटे बच्चें और मीठेजल व खारा जल झींगों की लार्वा या लार्वा के बाद की अवस्था को ही मत्स्य बीज माना जाता है। आधुनिक मत्स्य पालन पद्धतियों के कारण प्रेरित प्रजनन द्वारा कॉमन कार्प, ग्रास कार्प, सिल्वर कार्प मत्स्य बीजों का भी उत्पादन किया जा रहा है।

मत्स्य बीजों की विभिन्न दशाऐं

सामान्यतः मत्स्य पालन में मछली व झींगों के विभिन्न दशाओं की मत्स्य बीजों का उपयोग होता है। भारतीय मेजर कार्प मछलियों के संदर्भ में अंडों से स्फुटन के बाद एक से छः दिन आयुवाले बच्चों को स्पान या जीरा कहा जाता है। इन जीरों की लम्बाई 6-9 मि.मी. के बीच होती है और बहुत ही नाजुक होती हैं। इस अवस्था में इनके शरीर पर कोई शल्क (स्केल) नहीं होते है परन्तु शरीर पर रंगीन पिगमेंट होते हैं। ये छोटी मछलियाँ ठीक तरह से तैर भी नहीं पाती है क्योंकि तब तक इनके पंख पूरी तरह विकसित नहीं होते है, अधिकांशतः पानी के बहाव के अनुरुप ही तैरते हैं। झींगों के मामले में स्फुटन के बाद लार्वा तथा लार्वा के बाद की अवस्था से हो कर तरुप झींगों में विकसित होने में 30-40 दिन लग जाते हैं।

भारतीय मेजर कार्प के संदर्भ में दूसरी अवस्था पोनों की है। इस अवस्था के दौरान इनकी लम्बाई 1.5 से.मी. से 5.0 से.मी. के बीच होती है। पोनों के शरीर पर शल्क निकल आते हैं एवं इनके पंख पूरी तरह विकसित तथा इनकी आयु 10-25 दिन हो जाती है। ये मत्स्य पोने जल प्रवाह के विपरीत तैर सकती हैं एवं सक्रिय रुप से आहार लेती हैं। इन मत्स्य बीजों में पोना अवस्था के बाद अंगुलिका अवस्था आती है तब ये बीज 10 से 15 से.मी. लम्बाई प्राप्त कर लेती है तथा 20 से 35 दिन आयुवाली हो जाती हैं। मछलियों व झींगों की विभिन्न अवस्थाओं का विवरण निम्नलिखित है -

उपर्युक्त सभी आमाप के बीजों का उपयोग मत्स्य पालन हेतु किया जाता है। इन अवस्थाओं में मत्स्य बीजों का परिवहन बड़े पैमाने पर छोटे-छोटे परिमाणों में सरलता से, कम खर्च पर किया जा सकता है।

क्र.सं. अवस्था	आयु	लम्बाई	संख्या प्रति युनिट
1. जीरा (कार्प)	1-4 दिन	5-9 मि.मी.	250-300/मि.ली.
2. पोना (कार्प)	5-20 दिन	1-6 से.मी.	100-200/20 मि.ली.
3. अंगुलिका (कार्प)	20-40 दिन	6 से.मी. से अधिक	5-15/20 मि.ली.
4. झींगा लार्वा	10-15 दिन	8 मि.मी. से 1.5 से.मी.	50-200/मि.ली.

मत्स्य बीज परिवहन

चूँकि मछलियाँ एवं झींगें जल में रहते है और श्वास प्रक्रिया हेतु आक्सीजन जल से ग्रहण करते तथा कार्बन डाइआक्साइड जल में ही छोड़ते हैं। अतः जल ऑक्सीजन से परिपूर्ण होना इन्हें जीवित रखने के लिए आवश्यक है। जब मछलियों व झींगों के जीरों, पोनों, अंगुलिकाओं व लार्वा को कम जल परिमाण में परिवहन किया जाता है तो बड़ी मात्रा में ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। सामान्यतः मत्स्य पालन में बीज उत्पादन क्षेत्र से मत्स्य पालन क्षेत्र तक मत्स्य बीजों का परिवहन आवश्यक हो जाता है चूँकि दोनों क्षेत्र अलग-अलग स्थानों पर स्थित होते हैं।

मत्स्य बीज परिवहन में तापमान का विशेष महत्व होता है। जब जल का तापमान कम (12-25° से.ग्रे.) होता है तो इसमें बड़ी मात्रा में ऑक्सीजन घोली जा सकती है। जल का यह तापमान मत्स्य परिवहन के लिए उपयुक्त है।

अन्य महत्वपूर्ण अंश है जल का पी.एच. स्तर, जब जल का पी.एच. 7 या न्यूट्रल रहता है तो यह स्थिति मत्स्य बीज परिवहन के लिए अनुकूल है। पी.एच. स्तर 7 से कम हो तो यह अम्लीय हों जाता है, और अधिक होने पर क्षारीय हो जाता है। दोनों ही स्थितियाँ परिवहन के लिए अनुकूल नहीं हैं।

इन बातों के अलावा स्वस्थ मत्स्य व झींगा बीजों का ही परिवहन किया जाना चाहिए अन्यथा वांछित परिणाम नहीं मिल सकते हैं। रोगग्रस्त व कमजोर मत्स्य बीजों का परिवहन नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि ये बीज परिवहन के दौरान पड़ने वाले दबाब को सहन नहीं कर सकते हैं। परिवहन के लिए ऐसी स्थितियाँ हों, जहाँ इन बीजों का जीवित अवस्था में बड़ी सरलता एवं सफलता से कम खर्च पर परिवहन किया जा सके। इन छोटी मछलियों को लम्बी दूरी तय करने के दौरान दबाव सहन करना पड़ता है।

परम्परागत मत्स्य बीज परिवहन

हमारे देश में मत्स्य पालन एवं मत्स्य बीज परिवहन सदियों पुरानी है। पहले मत्स्य पालन के लिए आवश्यक समस्त बीज नदीय स्त्रोतों से ही प्राप्त किया जाता था। मानसून काल में मछलियों के प्रजनन समय में मत्स्य बीजों को शूटिंग नेट की सहायता से एकत्रित कर, मत्स्य पालन क्षेत्रों तक ले जाया जाता था। मिट्टी के हण्डियों में आविल नदीय जल में (Turbid river water) मत्स्य बीजों को डालकर ले जाया जाता था। हण्डी के जल को हाथों से छपछपाया जाता था जिससे जल में ऑक्सीजन की आपूर्ति हो एवं बीजों को पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन मिल सके। कभी कभी इन हण्डियों को एक बाँस के पट्टे के दोनों ओर झुलाकर कंधों पर ढो कर ले जाया जाता था जिससे अपने आप ही इन हण्डियों के जल में छपछपाहट पैदा हो कर, जल में ऑक्सीजन की आपूर्ति हो जाती थी। मिट्टी के हण्डियों के उपयोग के कारण जल का तापमान भी अनुकूल (15^0 से 25^0 से.ग्रे.) रहता था।

मत्स्य बीजों का आधुनिक परिवहन

मत्स्य प्रजनन दिशा में प्रेरित प्रजनन प्रणाली के समावेश से, विशेषकर भारतीय मेजर कार्प मछलियों को पीयुष ग्रन्थियों के सार की सुई लगाकर प्रजनन कराने की प्रक्रिया तथा हैचरी प्रबन्धन के विकास से मत्स्य बीज परिवहन में तेजी आयी है। इसके अलावा झींगों के प्रजनन और बीज उत्पादन के आधुनिक तकनीकों के कारण झींगों के बीज भी देश में बड़े पैमाने पर उपलब्ध हैं।

आधुनिक मत्स्य बीज परिवहन में, मत्स्य बीजों को स्वस्थ जल एवं आवश्यक परिमाण में ऑक्सीजन के साथ पॉलीथीन थैलियों में भर कर, इन्हें मेटल या कार्डबोर्ड के बक्सों में रख दिया जाता है। ये मेटल या कार्डबोर्ड बॉक्स लम्बी दूरी के परिवहन के लिए सुविधाजनक हैं। इस तकनीक से मत्स्य बीजों पर कम दबाव पड़ता है एवं बीज स्वस्थ रहती हैं। इस तकनीक से जब मछलियों के जीरों या झींगों के लार्वा को लम्बी दूरी तक ले जाता है तो आर्थिक रुप से भी काफी लाभदायक है। परिवहन से संबंधित विवरण इस प्रकार है –

1.	कन्टेयनर	15-20 लीटर क्षमतावाली (मेटल या कार्डबोर्ड बॉक्स)
2.	पॉलीथीन बैग	15-20 लीटर क्षमता एवं मोटी परत से बनी
3.	ऑक्सीजन	8-10 लीटर औद्योगिक ऑक्सीजन गैस
4.	स्वस्थ जल	5-8 लीटर ट्यूबवेल या नल का पानी जिसका तापमान 15-25^0 से.ग्रे. हो।
5	मत्स्य बीज	क) जीरा/झींगों का लार्वा 15000-20000 प्रति पैकिंग 6-10 घंटों की परिवहन अवधि ख) कार्प मछलियों के पोने - 500-1200 प्रति पैकिंग 6-10 घंटों की परिवहन अवधि

मिश्रित मत्स्य पालन

अर्धेन्दु मुखर्जी, पूर्व प्रधान वैज्ञानिक
केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर

भूमिका

केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित तकनीकी प्रणाली से मीठेजल तालाबों से (खाने योग्य आमाप की मछलियाँ) बड़ी उपज प्राप्त होती है। इस तकनीकी प्रणाली के अंतर्गत तेजी से विकास करनेवाली मत्स्य प्रजातियों को उचित अनुपात एवं सही संग्रहण दर से प्रबन्धन योग्य जल निकायों में संग्रहित किया जाता है जहाँ आवश्यक उर्वरक एवं पूरक आहार भी दिया जा सके। उच्च मत्स्य उपज प्राप्त करने हेतु इस प्रणाली के निम्नलिखित मद हैं :—

खरपतवारों का उन्मूलन

तालाब, खरपतवारों से भरा होना मत्स्य पालन के लिए नुकसानदायक है। ये खरपतवार पोषक तत्वों एवं घुलित आक्सीजन का उपभोग करते हैं एवं मत्स्यन कार्य में भी बाधा डालते हैं। जलीय खरपतवार अनेक प्रकार के होते हैं जैसे- ऊपरी सतह पर तैरनेवाली खरपतवार जलकुम्भी, *वाटर लेट्टूस, डक्वीड* आदि; सतह से ऊपर वाले खरपतवार *वाटर लिलि, लोटस* आदि; जलमग्न खरपतवार हायड्रिला, नजास आदि; सीमान्त खरपतवार - सेड्जस, ग्रास, वाटर प्रिमरोज आदि। इन विभिन्न खरपतवारों का घनत्व अलग-अलग स्तर का होता है।

यदि तालाब में खरपतवार की अधिकता न हो तो इनका उन्मूलन मजदूरों द्वारा करवाया जा सकता है जिसके लिए हल्की नाव, हँसुआ आदि की आवश्यकता होती है। तालाब में खरपतवारों की भरमार हो तो मजदूरों से साफ करवाना आर्थिक रूप से नुकसानदायक होता है, अतः खरपतवारनाशक रसायनों का उपयोग किया जाना आवश्यक है। खरपतवारनाशक रसायन अनेक प्रकार के होते हैं जैसे- टाफिसाइड, हेक्सामार और फेरनाक्सोन। इन रसायनों का उपयोग जलकुम्भी, लिलि एवं सेड्जस के लिए 8 से 10 कि.ग्रा./हे. की दर से तथा वाटर लेटटूस के लिए ग्रामोक्सोन का 0.5 से 1.0 कि.ग्रा./हे. की दर से उपयोग किया जाता है। जड़वाले

जलमग्न खरपतवारों के उन्मूलन लिए 15 से 20 पीपीएम की दर से अमोनिया का उपयोग किया जा सकता है। अमोनिया, ग्रामोक्सोन एवं 2,4-डी आदि उपयोग के लिए एक छिड़काव यंत्र की आवश्यकता होती है। चूँकि रसायनों की सहायता से खरपतवारों के उन्मूलन में रसायनों की सही मात्रा का निर्धारण तथा उपयोग करने की विधि की जानकारी की आवश्यकता होती है अतः मत्स्य पालक इसके लिए संबंधित राज्य सरकार या इस संस्थान से संम्पर्क कर सकते हैं।

कुछ खरपतवारों जैसे - डक्वीड, हायड्रिला, नजास, सेराटोफाइलम आदि के उन्मूलन के लिए तालाब में पर्याप्त मात्रा में ग्रास कार्प मछलियों का पालन किया जा सकता है।

परभक्षी एवं अपतृण मछलियों का उन्मूलन

तालाब में कार्प मछलियों की अंगुलिकाओं को संग्रहित करने से पूर्व इसे पूरी तरह परभक्षी एवं अपतृण मछलियों से मुक्त करना, अंगुलिकाओं की अतिजीविता एवं विकास के लिए अति आवश्यक है। अवांछित मछलियों का उन्मूलन तालाब से पूरी तरह जल निकाल कर या तालाब में विषैले पदार्थ डालकर किया जा सकता है। यदि तालाब से जल निकालना संभव नही है तो तालाब में ग्रीष्म ऋतु में जल स्तर कम रहने के दौरान विषैले पदार्थों के उपयोग से इनका उन्मूलन किया जा सकता है। विषैले रसायन जैसे एण्डरिन, ट्राफाडिन-20 आदि का उपयोग नही करना चाहिये क्योंकि इनका विषैलापन तालाब में लम्बी अवधि तक रह जाता है और इसका दुष्परिणाम पालन प्रक्रिया पर भी पड़ता है। अतः वनस्पति मूल के विषैले पदार्थों का उपयोग करना ही बेहतर होगा।

वनस्पति मूल का मत्स्य विष महुआ खली को 200 से 250 पी.पी.एम. अर्थात् 2000 से 2500 कि.ग्रा./हे. के दर से उपयोग करना प्रभावकारी होगा। इस खली को बाद की परिस्थितियों में भी खाद की तरह उपयोग किया जा सकता है। भिगोये हुये महुआ खली को तालाब के ऊपरी सतह पर अच्छी तरह छिड़कने के बाद जाल चलाकर इसे जल के साथ अच्छी तरह मिला दिया जाना चाहिये। इसके कुछ ही घंटे बाद मछलियाँ तड़पती हुई ऊपरी सतह पर आ जाती हैं जिन्हें जाल चलाकर निकाल लिया जाता है। इस तरह से मारी गई मछलियाँ खाने योग्य भी होती हैं। महुआ खली का विषैलापन तालाब में 15-20 दिनों तक ही रहता है। अतः तालाब

में संग्रहण कार्य इसके बाद ही करना चाहिये। इस विषैलेपन के जाँच के लिये मेजर कार्प की कुछ अंगुलिकाओं को तालाब में लगाये गये एक हापा में छोड़ दिया जाता है तथा 48 घण्टों तक यह निरीक्षण किया जाता है कि ये जीवित रहते हैं या नही।

चूने का प्रयोग

क्षारीय जल काफी उत्पादक होता है। अतः अम्लीय जल में सुधार लाने हेतु इसमें चूना मिलाया जाता है। चूने के बारीक चूर्ण को तालाब की ऊपरी सतह पर 300-500 कि.ग्रा./हे. के दर से छिड़काव किया जाना चाहिये। चूने के निर्धारित परिमाण के आधे भाग का उपयोग महुआ खली के उपयोग से पहले करना चाहिये एवं शेष परिमाण को 2 से 3 किश्तों में दिया जाना चाहिये।

तालाब की उर्वरकता

तालाब की प्राकृतिक उर्वरकता के पूरक के रूप में कार्बनिक व अकार्बनिक उर्वरक देना आवश्यक है। मत्स्य संग्रहण से 15 दिन पूर्व तालाब में कच्चा गोबर का उपयोग 2000 कि.ग्रा./हे. की दर से किया जाना चाहिये। इसके उपरांत दूसरे महीने से प्रत्येक माह 2000 कि.ग्रा./हे. के दर से उपयोग करते रहना लाभदायक है। यूरिया, अमोनियम सल्फेट, कैलशियम अमोनियम नाइट्रेट क्रमशः 15, 30 एवं 35 कि.ग्रा./हे. तथा सिंगल सुपर फॉस्फेट 20 कि.ग्रा./हे. या ट्रिपल सुपर फॉस्फेट 7 कि.ग्रा./हे. की दर से प्रति माह उपयोग किया जाना चाहिये। कार्बनिक खाद के उपयोग के 15 दिनों बाद अकार्बनिक खाद का उपयोग किया जाना आवश्यक है। पहली बार खाद देने का कार्य मत्स्य संग्रहण से 20 दिन पहले किया जाना आवश्यक है। यदि महुआ खली का उपयोग किया गया हो तो कच्चे गोबर की पहली किश्त देने की आवश्यकता नही होती है।

मत्स्य संग्रहण

तालाब में चयनित प्रजातियों को निश्चित अनुपात में संग्रहित किया जाना चाहिये। 10 मि.मी. लम्बी स्वस्थ अंगुलिकाओं का चयन किया जाना चाहिये। तालाब में पालन के लिये शीघ्र विकास करने वाली, समूह में रहने वाली और आर्थिक रूप से लाभकारी प्रजातियों का तथा तालाब में उपलब्ध मत्स्य आहार ग्रहण करने योग्य विदेशी कार्प प्रजातियों को संग्रहित किया जाना चाहिये।

सामान्यतः निम्नलिखित छः प्रजातियों को 5000 से 7500 अंगुलिकायें/हे. की दर से संग्रहित किया जाता है।

i) कतला - 750; रोहु - 1875; मृगल - 750; सिल्वर कार्प - 1875; ग्रास कार्प - 750 एवं कॉमन कार्प - 1500।

ii) कतला - 750; रोहु - 1500; मृगल - 750; सिल्वर कार्प - 1500; ग्रास कार्प - 750 एवं कॉमन कार्प - 1500।

यदि सिल्वर कार्प और ग्रास कार्प की अंगुलिकायें उपलब्ध न हों तो भारतीय मेजर कार्प या फिर कॉमन कार्प प्रजाति 5000-6000 अंगुलिकायें/हे. की दर से भी संग्रहित किया जा सकता है।

i) कतला - 2400; रोहु - 1800; मृगल - 1800।

ii) कतला - 2400; रोहु - 1800; मृगल - 900 एवं कॉमन कार्प - 900।

संपूरक आहार

केवल उर्वरकों के उपयोग से उच्च उत्पादन दर प्राप्त नही होता है। अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिये संग्रहित मछलियों को संपूरक आहार देने की आवश्यकता है। प्रति दिन मूंगफली या सरसों या तिल की खली के साथ चावल या गेहूँ की भूसी को बराबर मात्रा में मिलाकर संग्रहित मछलियों के कुल शारीरिक भार का 1-2% आहार दिया जाना आवश्यक है। संपूरक आहार को तालाब के ऊपरी सतह पर किसी विशेष स्थान पर नित्य छिड़काव किया जाना चाहिये अथवा इसे गोलियों के रूप में बनाकर किसी ट्रे में तालाब के अन्दर रख दिया जाना चाहिये। यदि तालाब में शैवाल प्रस्फुटन हो तो संपूरक आहार को कम या बंद कर देना चाहिये।

यदि ग्रास कार्प संग्रहित किया गया हो तो हाइड्रिला, नजास, सिराटोफाइलम, लेम्ना, वोल्फिया, अजोला आदि आहार के रूप में दिया जाना चाहिये। इसके लिये नरम घास का भी उपयोग किया जा सकता है।

उपज प्राप्ति एवं उत्पादन

बिक्री योग्य मछलियों को बीच-बीच में निकाल लिया जाना चाहिये ताकि अन्य मछलियों को अधिक स्थान प्राप्त हो सके। जितनी मत्स्य उपज निकाल ली जाती है उतनी ही मात्रा में मत्स्य बीजों को संग्रहित करने से उत्पादन में वृद्धि होती है। ड्रैग नेट की सहायता से पूरी उपज को निकाल लिया जा सकता है जिससे एक वर्ष में 3000 से 4000 कि.ग्रा./हे. उपज प्राप्त होती है।

वायुश्वासी मत्स्य पालन

एस. आर. दास, पूर्व प्रधान वैज्ञानिक
केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर

भूमिका

वायु श्वासी मछलियों को हवा में साँस लेने वाली मछलियों के रुप में भी जाना जाता है। सामान्यतः मछलियाँ अपने गलफड़े द्वारा ही श्वसन क्रिया करती हैं लेकिन इन मछलियों में गलफड़े के अलावा भी कुछ विशेष प्रकार की रचनाएँ होती हैं जिनकी सहायता से ये वायुमंडलीय ऑक्सीजन को भी सीधे तौर पर ग्रहण करने में सक्षम होती है। इसी कारण से यह मछलियाँ उथले, दलदली तथा परित्यक्त जलक्षेत्रों में जहाँ ऑक्सीजन की मात्रा अत्यधिक कम होती है, में भी आसानी से रह सकती है। इन मछलियों में जहाँ प्रोटीन व लौह तत्वों की मात्रा अधिक होती है वहीं वसा तत्व काफी कम होते है। यही वजह है कि इन मछलियों की माँग भी काफी है तथा इनके दाम भी अधिक मिलते हैं। यह सही है कि इनके पालन का कोई परम्परागत तरीका नहीं है लेकिन विभिन्न अनुसंधान कार्यों व प्रयोगों से इस संबंध में बहुत सी उपयोगी जानकारियाँ प्राप्त हुई हैं। केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर ने अपने अध्ययनों के आधार पर इन मछलियों के पालन व इनका उत्पादन बढ़ाने हेतु कुछ संवर्धन विधियों को प्रस्तुत किया है।

भारत के अनेक राज्यों जैसे असम, मेघालय, बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र तथा तमिलनाडु में वायु श्वासी मछलियों की मात्स्यिकी काफी महत्वपूर्ण है। सिंघी व मांगुर अपने गुण व स्वाद के कारण सम्पूर्ण भारत विशेषकर उत्तरी भारत में अत्यधिक लोकप्रिय हैं।

पालन योग्य प्रजातियाँ

वायु श्वासी मछलियों की अनेक प्रजातियाँ हैं जिनमें मांगुर (*Clarias batrachus*), सिंघी (*Heteropnuestes fossilis*), कोई/कवई (*Anabas testudineus*) तथा मरैल (जाइंट मरेल- *Channa marulius*, स्ट्रिप्ड मरेल - *C. striatus*, स्पाटेड मरेल - *C. punctatus*) पालन योग्य महत्वपूर्ण प्रजातियाँ हैं। मछली पालन की दृष्टि

से वायुश्वासी मछलियों में मांगुर (*C. batrachus*) सबसे उपयुक्त मछली है। आज भारत में ही नहीं बल्कि थाइलैण्ड तथा दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में भी यह बहुत ही लोकप्रिय है।

पालन पद्धतियाँ

तालाब प्रबन्धन

वायुश्वासी मछलियों का पालन उन सभी जलक्षेत्रों में किया जा सकता है जो परम्परागत प्रजातियों के लिये अनुपयुक्त हैं। ऐसे तालाब जो कार्प पालन के लिये उपयुक्त नहीं है उनमें इनका पालन किया जा सकता है। उथले जलक्षेत्र (2-3 फीट) इनके पालन हेतु उपयुक्त है क्योंकि वायुमंडलीय ऑक्सीजन प्राप्त करने में इन्हें कम उर्जा व्यय करनी पड़ती है। यह पालन प्रणाली अल्पकालिक है। अंगुलिकाएँ (6-10 ग्रा.) तथा खाद्य पदार्थ दो ही प्रमुख आवश्यकताएँ हैं। यदि संग्रहण दर बहुत अधिक है या एक से अधिक पैदावार लेना है तो जल पुनर्भरण भी जरुरी है। सफल प्रबन्धन के लिये यह आवश्यक है कि तालाब 0.1-0.2 हे. से बड़ा न हो। बारहमासी तालाबों से परभक्षी मछलियों को महुए की खली (250 कि.ग्रा./हे.मीटर) द्वारा हटाना चाहिए। यदि तालाब का तल गादयुक्त एवं कठोर हो तो चूने का प्रयोग 300 कि.ग्रा./हे. की दर से फायदेमंद होगा।

बीज संग्रहण

मांगुर, सिंघी तथा मरैल मछलियों की सफल प्रेरित प्रजनन के पश्चात् भी बीज हेतु प्राकृतिक संसाधनों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। मरैल प्रायः टैंक, नदियों तथा दलदली बीलों में अप्रैल से जून के दौरान प्रजनन करती है। सिंघी व मांगुर प्रायः दलदली बीलों तथा धान के खेतों में वर्षाकाल में प्रजनन करती है। सिंघी व मांगुर के बीज संग्रहण का शिखर समय शीतकाल से पूर्व है। मरैल के बीज संग्रहण का समय मानसून है।

आहार

वायुश्वासी मछलियाँ सामान्यतः मांसाहारी होती हैं। पालन प्रणाली में पूरक आहार हेतु इन्हें सूखी हुई छोटी समुद्री मछलियाँ, तेलों की खली, चावल का चोकर आदि दिया जाता है। मांगुर व सिंघी सूक्ष्म केकड़ावंशी प्राणियों, कीड़े मकोड़े तथा अन्य प्रकार के लार्वा खाती हैं। कोई/कवई मछली अपनी प्रारंभिक अवस्था में सूक्ष्म प्लवक भक्षी होती है लेकिन बाद में यह कीट भक्षी हो जाती है।

पालन अवधि व उत्पादन

औसतन मांगुर तथा सिघी छः माह के अंदर क्रमशः 920 ग्रा. तथा 500 ग्रा. की हो जाती हैं। मरैल समूह में जांइट मरेल - 400 ग्रा., स्ट्रिप्ड मरेल - 275 ग्रा. तथा स्पॉटेड मरेल - 160 ग्रा. का शारीरिक भार 7 से 8 माह के अंदर ग्रहण कर लेती हैं। उत्पादन की दृष्टि से 6 से 8 माह में एक हेक्टर जलक्षेत्र से 3-5 टन की उपज प्राप्त होती है।

पिंजरों में पालन

वायुश्वासी मछलियों को पिंजरों में पालन के प्रयोग भी सफल रहे हैं। बाँस की पट्टियों तथा फायवर जालों (12-20 मेश/इंच) से बने पिंजरे उपयोग में लाये गये जिनका आकार $2 \times 1 \times 1$ मीटर था। मांगुर का संग्रहण 200 अंगुलिकाएं/पिंजरा किया गया तथा इन्हें 10% शारीरिक-वजन के आधार पर सूखी छोटी मछलियों, तेलों की खली व चावल की भूसी खिलाया गया जिससे 10-12 कि.ग्रा. प्रति घनमीटर प्रति वर्ष का उत्पादन प्राप्त हुअ। सिंघी का संग्रहण 100-150 अंगुलिकाएँ/पिंजरा व आहार 10% शारीरिक भार के अनुसार चावल की भूसी, सरसों तेल की खली व रेशम के कीड़ों के प्यूपे खिलाने पर 3-5 कि.ग्रा./घन मीटर का उत्पादन 3 माह के अंदर प्राप्त हुआ। कवई मछली का संग्रहण 50-100 अंगुलिकाएँ प्रति पिंजरा व उपरोक्त पूरक आहार के द्वारा 1-3 कि.ग्रा./घन मीटर तीन माह में पाया गया। उत्पादन का संपूर्ण खर्च 4 रुपये से 12 रुपये प्रति किलो के बीच आया।

धान व वायुश्वासी मत्स्य पालन

धान के साथ वायुश्वासी मछलियों के मिश्रित पालन के भी प्रयोग संस्थान द्वारा किये गये हैं। 8-10 से.मी. जल की उपलब्धता वाली 6×28 मी. धान के खेत में प्रयोग किया गया। इस खेत में राधुनीपागल खूशबूदार किस्म के साथ मांगुर व सिंघी (1:1 अनुपात में; 30 ग्रा. वजन) 1 मछली प्रति वर्ग मीटर की दर से संग्रहित किया गया। एक माह में 375 कि.ग्रा./हे. मत्स्य उत्पादन तथा 1800 कि.ग्रा./हे. धान व 4000 कि.ग्रा./हे. पुआल (स्ट्रा) का उत्पादन प्राप्त हुआ।

मांगुर, सिंघी तथा कवई मछलियों का पालन मखाना के साथ भी किया जा सकता है।

मत्स्य व मुर्गी/बत्तख सहपालन – जलकृषि में एकीकृत पालन का प्रयास

अमिताभ घोष, पूर्व प्रधान वैज्ञानिक
केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर

भूमिका

मांसाहारी भोजन की बढ़ती मांग के कारण मत्स्य उत्पादन में वृद्धि अति आवश्यक हो गई है। यदि मत्स्य उत्पादन अन्य खाद्य उत्पादों के साथ-साथ किया जाए तो उत्पादन में वृद्धि ही नही बल्कि भूमि एवं जल का औचित्यपूर्ण उपयोग से रोजगार के साधन भी उपलब्ध होंगे। प. बंगाल में धान व मत्स्य, तथा बिहार में मखाना व मत्स्य पालन विधियाँ अपनायी जाती हैं। पिछले 4-5 दशकों से मत्स्य पालन के साथ मुर्गी, बत्तख, बकरी, सुअर आदि का सह-उत्पादन किया जा रहा है। इन पशुओं के रस-उत्पादन से मत्स्य पालन तालाबों में खाद की आपूर्ति होती है, साथ ही मांस, दूध, अण्डों के रूप में अतिरिक्त आय होती है। प्रस्तुत लेख में मत्स्य पालन के साथ-साथ मुर्गी या बत्तख पालन विधि पर प्रकाश डाला गया है।

बहु प्रजातीय मत्स्य पालन

मत्स्य पालन तालाब आयताकार एवं 1.0 से 1.5 मी. गहराई वाली होती है, जिसका क्षेत्रफल 0.5 से 1 हे. के बीच होता है। छोटे तालाबों का प्रबन्धन आसान होता है। जल प्रवेश एवं निकासी की सुविधा होना बेहतर है। तालाब की ऊपरी सतह पर जल छिड़काव की व्यवस्था हो तो आवश्यकतानुसार घुलित ऑक्सीजन की कमी को दूर किया जा सकता है।

भारतीय मेजर कार्प अंगुलिकाओं (10-15 से.मी.) को 7000-10,000/हे. की दर से संग्रहित किया जाता है। संग्रहित प्रजातियों का अनुपात कतला 4: रोहू 3: म्रिगल 3 होना उपयुक्त है। यदि कालबसु प्रजाति का भी पालन किया जाता है तो निचली सतह पर भोजन लेने वाली प्रजातियों की अनुपात में बदलाव कर मृिगल 1.5: कालबसु 1.5 किया जाना चाहिए। भारतीय मेजर कार्प प्रजातियों के साथ सिल्वर कार्प, ग्रास कार्प और कॉमन कार्प प्रजातियों को भी संग्रहित किया जा सकता है।

लेबियो बाटा, सिरहिनस रेबा, पंकटियस सराना का भी पालन किया जा सकता है। संग्रहित सभी प्रजातियों में तालमेल होना आवश्यक है अन्यथा भोजन आदि के लिए प्रतिस्पर्धा होती है। संग्रहित प्रजातियाँ कृत्रिम आहार ग्रहण करती हुई तेज विकास करने वाली होनी चाहिए। इन प्रजातियों की बाजार में माँग होना भी आवश्यक है ताकि आय में कमी न हो।

तालाब में उपलब्ध प्राकृतिक आहार (पादप व जन्तु प्लावक एवं नितल जीवजात) के साथ-साथ संपूर्क आहार देने की भी आवश्यकता होती है। कृत्रिम आहार के रुप में मूँगफली की खली एंवं चावल की भूँसी को 1:1 अनुपात में मिलाकर मछलियों की कुल शारीरिक भार का 2-5 प्रतिशत दिया जाता है। सामान्यतः मत्स्य पालन 10 माह से 1 वर्ष की अवधि तक किया जाता है जिसके दौरान भारतीय मेजर कार्प एवं विदेशी कार्प मछलियाँ 800-1200 ग्राम की हो जाती हैं। ऊपर उल्लेख की गई माइनर कार्प मछलियाँ इतनी तेजी से विकास नहीं कर पाती हैं परन्तु इन छोटी मछलियों का बाजार मूल्य अधिक होता है।

मत्स्य बीज संग्रहण से पहले तालाब में महुए की खली एवं चूना डाला जाता है। तालाब की निचली सतह को खुरच कर एकत्रित गैस आदि निकाल लिया जाना चाहिए। इसके बाद तालाब में गोबर व अन्य अकार्बनिक उर्वरकों का उपयोग किया जाता है। मत्स्य व मुर्गी/बत्तख सह पालन में कार्बनिक खाद के रूप में इनके बिड (मल) का उपयोग किया जा सकता है।

मत्स्य पालन के साथ मुर्गी या बत्तख पालन

मत्स्य व मुर्गी पालन

मत्स्य पालन तालाब के निकट या तालाब के ऊपर लकड़ी की बनी प्लेटफॉर्म पर मुर्गियों को बड़ी सफलता से पाला जा सकता है। मुर्गियों में *रोड आईलैण्ड* रेड, *लेगहार्न* या स्थानीय प्रजातियों का पालन किया जा सकता है। मुर्गियाँ 20-22 सप्ताह की आयु में अण्डे देती है और 1½ वर्ष की आयु तक अण्डे देती रहती है। मत्स्य पालन का 1 हेक्टयर तालाब की खाद आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए 500-600 मुर्गियाँ पर्याप्त हैं। इन मुर्गियों को बाजार में उपलब्ध रेडिमेड आहार 50-70 ग्राम/मुर्गी/दिन दिया जाना चाहिए। मुर्गियों को इस तरह रखा जाना चाहिए कि

प्रत्येक को 0.3 वर्गमीटर का स्थान प्राप्त हो। इन मुर्गियों से मत्स्य पालन तालाब में प्रति दिन 60 किलोग्राम बिड (मल) गिरता है। इस बिड में 1.6 प्रतिशत नाइट्रोजन, 1.5 प्रतिशत फास्फोरस तथा 0.9% पोटाशियम ऑक्साइड रहता है।

मत्स्य व बत्तख पालन

बत्तख पालन हेतु कोई विशेष स्थान की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि वे अधिकतर समय तालाब में ही व्यतीत करती हैं। इन बत्तखों को रात के समय रखने के लिए बाँस से बनी एक छोटी कुटिया की आवश्यकता होती है। बत्तख रखने के लिए आवश्यक कुटिया तालाब के निकट या इसके तटबंध पर बनाया जा सकता है। तेल के बैरलों के उपयोग से तैरने वाली कुटिया भी बनाया जा सकता है। कुटिया छोटी नहीं होनी चाहिए अन्यथा अण्डों के उत्पादन पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। बत्तखों को रहनें के लिए सामान्यतः 0.3-0.5 वर्गमीटर स्थान की आवश्यकता होती है।

बत्तख पालन के लिए *इण्डियन रनरस* या *खाके कैम्बेल* प्रजातियाँ उपयुक्त हैं। यह देखा गया है कि 1 हे. जल क्षेत्र में खाद देने के लिए 200-300 बत्तखों की आवश्यकता होती है। 2-4 माह आयु वाले बत्तखों को आवश्यक रोग प्रतिरोधात्मक उपचार के बाद तालाब में छोड़ा जाता है। इन बत्तखों को मुर्गियों के लिए बनी रेडिमेड आहार के साथ चावल की भूँसी 1:2 अनुपात में मिलाकर 100 ग्राम आहार प्रति बत्तख प्रति दिन की दर से दिया जाता है। बत्तख 24 सप्ताह आयु के बाद अण्डे 2 वर्षों तक देती रहती है। स्थानीय प्रजाति *इण्डियन रनरस* प्रति वर्षों 180-200 अण्डे देती हैं। चूँकि बत्तख रात के समय अण्डे देती है। अतः अण्डे तालाब में नष्ट नहीं होते है। कुटिया में एक ओर कुछ घास रख दिया जाना चाहिए जिस पर अण्डे दिया जा सके। बत्तखों के बिड (मल) से तालाबों की खाद आवश्यकता तथा मछलियों की पूरक आहार की भी आपूर्ति होती हैं। बत्तख पालन के कारण तालाब में खरपतवार भी नियंत्रित रहते है। बत्तख अपने पाँवों से तालाब की निचली सतह को कुरेदते रहते है जिससे सतह के पोषक तत्व ऊपर की ओर आते है। बत्तखों का 20-50% आहार जलीय पौधों, कीटों, मोलस्कों आदि से प्राप्त होता है।

मछली के साथ मुर्गी व बत्तख पालन काफी लाभदायक है। एकल उत्पादन की तुलना में बहु-उत्पादों की खेती अधिक लाभदायक है।

मीठाजल झींगा पालन

एम. के. मुखोपाध्याय, पूर्व प्रधान वैज्ञानिक
केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर

भूमिका

झींगा उत्पादन के लिए अनुभवहीन किसान हिचकिचाहट महसूस करते हैं लेकिन झींगा पालन लगभग मत्स्य पालन जैसा ही है। महाझींगा उत्पादन पद्धति विश्व के अनेक देशों मे विकसित है जहाँ उत्पदन क्षमता लगभग 4.2 टन/हे./वर्ष तक दर्ज किया गया है। प्राप्त आंकड़ों के अनुसार सबसे अधिक उत्पादन 4.2 टन/हे./वर्ष ब्राजील में किया गया है। दूसरा स्थान ताइवान 2.5-3.0 टन/हे./वर्ष तथा तीसरा स्थान गुअडिलोप 1.2-2.5 टन/हे./वर्ष घोषित किया गया है। इसके अलावा वियतनाम, अमेरिका, थाइलैंड, पोर्तोरिका, फ्रेंच पालीनेसिया, मैरीनीक्यू डोमेनियन रिपब्लिक के साथ अफ्रीका, एशिया, यूरोप, दक्षिण अमेरिका के अनेक देशों में पालन पद्धित पूर्ण विकसित हैं। जहाँ उत्पादन क्रमशः 280-4000 किग्रा./हे./वर्ष पाया गया है। अनेक स्थानों में इनका पालन मिश्रित पालन के रूप में मछलियों के साथ किया जाता है। इजराइल में 7-8 महीने की अवधि में मिश्रित पालन में मछली 3000-4000 किग्रा. और झींगा 1500-2000 किग्रा./हे. पैदा किया गया है। प्राप्त आंकड़ों के अनुसार केवल भारत में झींगा और कार्प मछली का मिश्रित पालन प्रचलन है जहाँ उत्पादन दर लगभग 600-1640 किग्रा./हे./वर्ष आँका गया है। देश मे तकनीकी विकास के साथ-साथ उसका पालनदेश में तकनीकी विकास के साथ उसका पालन का अनुभव किसानों को नहीं हो पाया है। इसके अलावा प्रचार-प्रसार हेतु अभी तक कोई कारगर कदम नहीं उठाया गया है। भारत में महाझींगा के बाद दूसरा स्थान भारतीय नदीय झींगा का स्थान आता है। जो देश के विस्तृत क्षेत्र में फैले होने के बावजूद विकसित तकनीकी के प्रचार-प्रसार न होने के कारण तालाब का उत्पादन दर बहुत कम है। उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार प्राकृतिक साधनों से उपलब्ध बीजों के पालन के द्वारा झींगा का उत्पादन 327-805 किग्रा./हे./वर्ष प्राप्त किया गया है जबकि हैचरी द्वारा उत्पन्न बीज के द्वारा यह उत्पादन दर 880-1130 किग्रा./हे./वर्ष प्राप्त किया गया है। मिश्रित पालन में कार्प मछलियों के साथ झींगा उत्पादन लगभग 170-327 किग्रा. एवं मछली 2084 किग्रा./हे./वर्ष प्राप्त किया गया।

मत्स्य या झींगा पालन पद्धति को अपनाने से पहले उत्पादन क्षमता के साथ तकनीकी का अन्य क्षेत्रों में अपनाये गये सफल परिणामों और पालन विधि की अच्छी जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए जो उसे स्वयं कार्यान्वित करने में सहायक हो सकता है। इस प्रकार झींगा पालन पद्धति को अपनाने के लिए विभिन्न क्रियाकलापों की पूरी योजनाएँ पूर्ण रूप से तैयार कर लेनी चाहिए।

स्थान का चुनाव

झींगा फार्म (प्रक्षेत्र) स्थापन के लिए ऐसे स्थान का चुनाव करना चाहिए जहाँ कार्यान्वयन हेतु सभी आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध हों, जैसे बीज, खाद्य सामग्री, प्रक्षेत्र उपकरण, फार्म उत्पाद आदि के ढुलाई के लिए सड़क मार्ग हो जिसका संबंध मुख्य मार्ग से हो। तालाब बनाने के लिए छिछले जलयुक्त जमीन का चुनाव करना चाहिए जहाँ खर्च कम होगा। इस क्षेत्र के आसपास उदबिलाव जैसे जानवर एवं मांसभक्षी चिड़ियों का बसेरा न हो साथ ही बस्ती से दूर हो। वहाँ के जल का रासायनिक परीक्षण कर लेना चाहिए जो झींगा पालन की दृष्टि से उपयुक्त हो। मिट्टी और जल में आवश्यक पोषक खनिज तत्व जैसे कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम, कैल्शियम, आयरन, सल्फर आदि आवश्यक मात्रा में उपलब्ध हो जिनका प्रभाव सीधे उत्पादकता पर होता है।

झींगा फार्म के लिए तालाब की बनावट इस प्रकार होनी चाहिए कि पूरा पानी बाहर करके झींगा पकड़ा जा सके, जिसके लिए पानी भरने और बाहर निकलने के लिए उचित व्यवस्था हो। झींगा पालन हेतु सुविधानुसार 0.1-1.0 हे. क्षेत्र का आयाताकार तालाब लम्बाई में अधिक हो जिससे छोटे जाल का उपयोग कर झींगा पकड़ने में सुविधा होगी। चूंकि झींगा तली में रहने वाला जीव है जहाँ आक्सीजन सतह एवं मध्य सतह की अपेक्षा गहराई के अनुसार कम होता जाता है। इसलिए तालाब डेढ़ मीटर से अधिक गहरा होने पर आक्सीजन के कमी के कारण इनका वृद्धि विकास प्रभावित होने के साथ मरने की संभावना अधिक बढ़ जाती है। तालाब के निचले तल पर बालू या बारीक कंकड़ या पत्थर का पतला परत झींगों के चलने-फिरने में सहायक होता है जिसके कारण उत्पादन क्षमता बढ़ जाती है।

तालाब की तैयारी

झींगा पालन हेतु ऐसे तालाब का प्रयोग करना चाहिए जिसका पानी बाहर कर सुखाने एवं जुताई कराने की सुविधा हो। ऐसा करने पर मिट्टी की उर्वरक क्षमता बढ़ जाती है। आक्सीजन के साथ प्राकृतिक जैव भोजन विकास की वृद्धि में सहायक होता है। तालाब सुखाने की सुविधा न होने पर, तालाब से अवांछित मछलियों को समाप्त करने के लिए महुआ की खली 2500 कि.ग्रा./हे./मी. की दर से प्रयोग किया जाता है। यह सुविधा न होने पर यूरिया 100 कि.ग्रा. और ब्लीचिंग पाउडर 200 कि.ग्रा. प्रति हे. मीटर प्रयोग किया जाना चाहिए। नये तालाब में 5 से 7 टन मवेशी खाद और 200 से 500 कि.ग्रा. चूना प्रति हे. मीटर की दर से डाला जाता है। पुराने तालाबों में यह मात्रा कम करके मवेशी खाद 1000 कि.ग्रा. और चूना 200 कि.ग्रा. प्रति हे. की दर से प्रदान किया जाता है। झींगा संचयन के बाद तालाब में प्राकृतिक जैव भोजन बढ़ोत्तरी के लिए मिट्टी और जल के अवस्था को ध्यान में रखते हुए कार्बनिक और अकार्बनिक खाद जैसे मुर्गी, सुअर, मवेशी का गोबर, गोबर गैस का स्लरी आदि को यूरिया एवं सुपर फास्फेट के मिश्रण को आवश्यकतानुसार प्रयोग में लाया जा सकता है।

झींगों में स्वजातिभोजी स्वभाव के साथ क्षेत्रीय एवं सामाजिक प्रभुत्व का गुण होता है। अतिक्रमण की अवस्था में अपने समुदाय के कमजोर सदस्य को मारकर भक्षण कर जाते हैं जिसके कारण उनकी वृद्धि एवं विकास में काफी अंतर पाया जाता है।

पालन या संचयन

तालाब की उपयुक्त विधि से तैयार करने के बाद तरूण झींगा छोड़ने की बारी आती है। यहां भी सावधानी बरतनी चाहिए। यदि बीज आसपास थोड़ी दूर पर उपलब्ध है तो सावधानी के साथ लाकर धीरे-धीरे तालाब के किनारे पानी मिलाते हुए ऐसे स्थान पर छोड़नी चाहिए जहाँ थोड़ी घास हो। यदि बीज थोड़ी दूर से लाया गया हो तो इसे उसी तालाब में हापा या मच्छरदानी लगाकर जल में अभ्यस्त होने के लिए कुछ घंटों तक रख देना चाहिए, क्योंकि पी.एच. में भिन्नता के कारण बच्चे मर जाते हैं जिसकी जानकारी नहीं हो पाती। स्थायी जल वाले तालाब जिसमें जल बदलने और वायुकरण की सुविधा न हो बीज का संचय दर अधिक से अधिक 30,000-50,000 प्रति हे. रखा जाता है। वायुकरण, जल बदलाव, जैव छनन, जल परिवहन इत्यादि उपलब्ध साधनों की स्थिति में, संचय संख्या बढ़ाकर एक लाख से डेढ़ लाख तक किया जा सकता है। खारा जल झींगा पालन की अपेक्षा मधुर जल झींगा

पालन की एक फसल में कुछ अधिक समय लगता है। इसके अलावा वृद्धि विकास में भिन्नता के कारण कुछ झींगा समय से पहले ही पकड़ने योग्य हो जाते हैं और कुछ पालन अवधि के बाद छोटे रह जाते हैं। इसलिए संचयन और निष्कासन की विधि अधिक उपयुक्त होता है या बड़े झींगों को बाहर कर छोटे को अन्य तालाब में पुनः संचय करना चाहिए। यह बात हमेशा ध्यान रहे कि मधुर जल झींगा संचयन के समय बीज का आकार समान हो अन्यथा उपयुक्त आचरण के कारण आकार में भिन्नता के साथ-साथ अंत में जीवित झींगा की प्राप्ति भी कम होगी।

आहार

झींगा पालन की उत्पादन क्षमता मुख्य रूप से आहार पर निर्भर करती है। प्रौढ़ झींगा पालन हेतु भोजन में 30-40 प्रतिशत प्रोटीन होना चाहिए जिसमें 50 प्रतिशत जैव और 50 प्रतिशत वनस्पति साधन से उपलब्ध होनी चाहिए। इनके आहार में मुख्य रूप से आस-पास के बाजारों में उपलब्ध सस्ते भोज्य पदार्थों का उपयोग करना चाहिए। जैसे चावल, चूड़ा, दाल के टुकड़े एवं भूसी, सरसो, मूँगफली, तिल, तीसी, कपास, नारियल आदि की खली, सोयाबीन, मक्का, ज्वार, बाजरा इत्यादि के अलावा पौधों से उत्पन्न उन सभी पोषक पदार्थों का प्रयोग कर सकते हैं उसी प्रकार जीव से उत्पन्न ऐसे पदार्थ जिसे अनुपयोगी समझ कर फेंक दिया जाता है जैसे मुर्गी, बकरे का अंतड़ी, कसाई खाने का कचड़ा, छोटे झींगा एवं मछली, झींगा प्रसंस्करण के अनुपयुक्त हिस्से, घोंघे व सीप के मांस, मरे हुए पक्षियों, मवेशियों व जानवरों के मांस आदि का उपयोग उचित उपचार के बाद करना चाहिए। इन भोज्य पदार्थों के साथ आवश्यकतानुसार उचित मात्रा में विटामिंस एवं खनिज तत्व का प्रयोग अन्य पोषक तत्वों के औसत में करनी चाहिए। जिससे झींगा पर्यावरण कुप्रभावों को सहन करते हुए पूर्ण वृद्धि एवं विकास को प्राप्त कर सके।

जलगुणवत्ता

जिस तरह झींगा बीज उत्पादन के लिए जल माध्यम का उपयुक्त होना अनिवार्य है। उसी प्रकार तालाब में प्रौढ़ झींगा उत्पादन के लिए जल के भौतिक एवं रासायनिक गुणों को उपयुक्त बनाये रखना नितांत आवश्यक है। जिनमें जल का तापमान 26-32 डिग्री से0, पी.एच. 7-8.5, घुलित आक्सीजन 2.5 पी.पी.एम. से ऊपर संपूर्ण कठोरता 100-150 पी.पी.एम., अमोनिया 0.02-0.20 पी.पी.एम., कैल्शियम 30-80 पी.पी.एम., नाइट्रोजन 0.05-0.5 पी.पी.एम. आदि मुख्य हैं। इनकी कमी या

अधिकता वृद्धि विकास के साथ उत्पादकता को किसी न किसी रूप में प्रभावित करती है। वातावरण के अनुसार तालाब के जल का तापक्रम घटता एवं बढ़ता रहता है। झींगा पालन के लिए 26-32°c उपयुक्त माना गया है। तापमान में थोड़े से अंतर कुछ साधनों द्वारा उपयुक्त बनाया जा सकता है, जैसे उच्च तापमान से बचाव हेतु तालाब के किनारे कुछ छायादार वृक्षों को लगाया जा सकता है। तालाब के अंदर बाँस का चौकोर ढाँचा बनाकर बाँस के द्वारा स्थान-स्थान पर मजबूती के साथ बाँध कर ढाँचा के अंदर जलकुम्भी के पौधों को लगा देना चाहिए। तापमान कम होने की अवस्था में ट्यूबवेल द्वारा तालाब में अधिक तापक्रम वाले जल को प्रवाहित करना चाहिए और कम तापक्रम वाले तालाब के जल को निष्कासित करना चाहिए।

वृद्धि एवं उत्पादन

झींगा के उत्तम वृद्धि, उत्पादन एवं उत्तरजीविता दर का संकेत तालाब के उपयुक्त जलके गुणवत्ता, पर्याप्त मात्रा में पोषक आहार, उचित पर्यावरण आदि पर निर्भर करता है। इस प्रकार दोनों प्रजातियों का अलग-अलग अभिपोषण कर 5-6 महीने के अंदर बेचने योग्य 35-150 ग्राम वजन के झींगे प्राप्त किये जा सकते हैं। नर का आकार मादा की तुलना में सदैव बड़ा होता है। नर की वृद्धि और विकास बड़ी तेजी से होती है, इसलिए 5 महीने के अंदर बिक्री योग्य हो जाने पर इसे तालाब से बाहर कर देना चाहिए। इस प्रकार 6-8 महीने के भीतर 40-60 प्रतिशत जीवित दर पर महाझींगा का उत्पादन लगभग 750-1500 किलोग्राम एवं भारतीय नदीय झींगा 750-1200 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। यह हमेशा उचित होगा कि झींगा पालन की अवधि 6-8 महीने रखनी चाहिए। लम्बे समय की स्थिति में बिक्री योग्य 30-50 ग्राम वजन के झींगों का बाहर करते रहना चाहिए। क्योंकि बड़े होने पर भोजन का शरीर के मांस में परिवर्तन की दर कम हो जाती है।

झींगा पकड़ना

तालाब के पूरे पानी को बाहर कर झींगों को पकड़ा जाता है। लेकिन इसके पहले समय-समय पर बिक्री योग्य बड़े झींगों को विशेषरूप से तैयार किये गये जाल से बाहर करते रहना चाहिए। मछली की अपेक्षा झींगों को साधारण जाल से पकड़ना कठिन है इसलिए इसके लिए विशेष प्रकार का जाल तैयार किया जाता है जिसके निचले हिस्से पर काँच या लोहे के सिंकर देकर थैले तैयार करते हैं, जिसमें प्रवेश के बाद झींगा का बाहर निकलना कठिन होता है। इसके अतिरिक्त झिंगुरी एवं अन्य

बहुत से जाल हैं जिनके द्वारा झींगा पकड़ा जाता है। 6-8 महीने के अंदर झींगा पकड़ने की स्थिति में बिक्री योग्य झींगों को अलग कर छोटे को पुनः अन्य तालाब में संचय करना चाहिए।

बाजार

झींगा मछली की अपेक्षा बहुत जल्द खराब होकर दुर्गन्ध पैदा करता है। इसलिए पकड़ने के तुरंत बाद बर्फ या बड़े फ्रीज में रखने की व्यवस्था होनी चाहिए। आजकल मुख्य रूप से भारत के समुद्र तटीय क्षेत्रों में विदेशों में निर्यात हेतु जगह-जगह पर प्रसंस्करण मशीन प्लांट लगाये गये हैं। सूचित करने पर वे स्वयं खरीद कर ले जाने की व्यवस्था करते हैं। जहाँ ये सुविधा न हो वहाँ पर शहर के बड़े-बड़े होटलों से संपर्क स्थापित कर झींगों को वहाँ पहुँचाने की व्यवस्था की जा सकती है।

मीठाजल में रंगबिरंगी मछली पालन

वी. आर. सुरेश, प्रधान वैज्ञानिक
केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर

भूमिका

रंगबिरंगी मछलियों के पालन का अर्थ है घिरे हुये स्थान पर ऐसी मछलियों का पालन जिसका उद्देश्य केवल सजावट के लिये है। इसका प्रारंभ सर्वप्रथम 100 वर्ष पूर्व चीन में काँच के बर्तनों में गोल्ड फिश पालन से हुआ तथा एक्वेरियम में पालन 1805 से शुरू हुआ। बाद में रंगबिरंगी मछलियों के पालन का प्रचलन इतना अधिक हो गया कि पूरे विश्व में इसका व्यापार 5 बिलियन अमेरिकन डॉलर तक पहुँच गया है। वर्तमान में यह व्यवसाय वृद्धि दर का 10 प्रतिशत है।

मीठे जल में रंगबिरंगी मछली पालन की देश में मांग होने के साथ-साथ विदेशों में निर्यात की भी उत्तम संभावना है। निर्यात होने वाले प्रजातियों में करीब 85 प्रतिशत उत्तरपूर्वी क्षेत्र से तथा बाकी स्थानीय रूप से प्राप्त विदेशी प्रजातियाँ होती हैं। निर्यात होने वाले देशों में मुख्य रूप से संयुक्त राष्ट्र अमेरिका (41.2 %), जापान(21.17%), इंगलैण्ड (13.64%), जर्मनी (8.03%) तथा उसके बाद नेपाल, सिंगापुर, थाईलैण्ड, सऊदी अरब, फ्रांस, इटली, हॉलैंड, स्वीडेन इत्यादि हैं । निर्यात किये जाने वाले क्षेत्र में सबसे अधिक कोलकाता (90%) से किया जाता है। इसके बाद मुम्बई(8%) तथा चेन्नई(2%) आते हैं।

भारत में रंगबिरंगी मछली के संसाधन क्षेत्र

भारत उपमहाद्वीप में रंगबिरंगी मछलियों का विराट स्रोत है जिनमें करीब 100 देशज प्रजातियाँ हैं। देश में आर्द्र क्षेत्र की अधिकता होने के कारण रंगबिरंगी मछलियों के विकास की संभावना बढ़ जाती है। देश में पाई जाने वाली बहुत सी प्रजातियों का अंतर्राष्ट्रीय एक्वेरियम क्षेत्र में प्रचलित हैं। देश में मीठा जल जैवविविधता दो स्थानों पर अधिक परिलक्षित होती हैं - उत्तर-पूर्वी राज्यों तथा पश्चिमी घाट क्षेत्र। रंगबिरंगी मछलियों के उत्तर-पूर्वी राज्यों के 123 प्रजातियों तथा बाकी क्षेत्रों से उपलब्ध 52 प्रजातियों का अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में अधिक मांग है। इसके साथ और कुछ दूसरी

प्रजातियाँ भी हैं जिनसे संभावना अधिक है अगर उनका गहन रूप से पालन किया जाय। मीठाजल में पाई जाने वाली प्रजातियाँ हैं- *चन्दा नामा, सी. रंगा, कोलिसा फासियाटा, सी. चानु, एप्लोकिलस पैनचैक्स, ए. ब्लोकि, ए. लिनिएटस, पुन्टियस टिक्टो, पी. सोफोर, पीं. कोनकोनियस, नेमाचिलस एस.पी.पी., नोटोप्टेरस एस.पी.पी., डेनियो एस.पी.पी., बैडिस बैडिस, रासबोरा डैनिकोनियस, बोटियो डेरो* इत्यादि।

रंगबिरंगी मछली पालन

किसी भी मछली पालन की सफलता क्षेत्र चयन पर निर्भर करती है और रंगबिरंगी मछली पालन के लिये भी यही सत्य है। इसलिये फार्म स्थापना से पहले इससे संबंधित चिंतन जरूरी है। अतः निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है-

- तालाब/टैंक/बर्तनों में प्राकृतिक प्रजनन होना चाहिये।
- नर्सरी पालन से पूर्व प्रजनन का नियंत्रण होना चाहिये।
- तालाब एवं टैंक में रियंरिग मत्स्य बीजों का आकार उपयुक्त होना चाहिये।
- बिक्री के लिये प्रयुक्त रंगबिरंगी मछलियों की खरीद कम समय के लिये होनी चाहिये।

स्थल चयन के लिये निम्नलिखित कारकों का ध्यान रखना चाहिये

- पारिस्थितिकीय
- जैविक एवं
- सामाजिक-आर्थिक

पारिस्थतिकीय कारक

रंगबिरंगी मछली पालन के लिये आवश्यक पारिस्थतिकीय कारक हैं- स्थान व उसकी भौगोलिक विशेषता, पालन के लिये उपयुक्तता, जल की गुणवत्ता एवं मात्रा तथा जलसंबंधी व मौसम संबंधी कारक।

स्थिति

रंगबिरंगी मछली पालन के लिये ऐसे स्थान का चयन किया जाना चाहिये जहाँ मीठे जल की उपलब्धता हो तथा साथ ही मत्स्य पालकों को भावी संभावनाओं को भी ध्यान में रख कर मछली पालन करना चाहिये। अक्सर यह देखा गया है कि शहरों में रहने वाले मत्स्य पालकों को बाद में स्थान व कानूनी अड़चनों के कारण इस

पालन के विस्तार में समस्या उत्पन्न होती है। दूसरी बात यह ध्यान देना चाहिये कि उत्पादन वाले स्थान में ही बिक्री की सुविधा या अगर दूर जाना पड़े तो परिवहन की सुविधा हो ।

भौगोलिक विशेषता

बड़े फार्म की स्थापना में भौगोलिक बातों पर भी ध्यान देना आवश्यक है। इस कृषि के लिये ढालुआ क्षेत्र होना चाहिये जिससे जल का निकास ठीक से होता है तथा निर्माण संबंधी कार्यों में सरलता एवं खर्च कम होता है। दलदल वाले क्षेत्र अनुपयुक्त होते हैं। मिट्टी के बर्तनों में परिवहन के लिये जल की उपलब्धता हमेशा होना चाहिये तथा क्षेत्र विशेष बाढ़ या सूखा जैसी समस्याओं से दूर हो।

मिट्टी संबधी उपयुक्तता

मिट्टी के हंडियों में पालन के लिये मिट्टी का प्रकार, संरचना, पी. एच., जैविक पदार्थ, प्रदूषकों की उपलब्धता आदि पर ध्यान देना चाहिये। मिट्टी की विशेषता विशेषकर रासायनिक प्राचल, जल की गुणवत्ता आदि पर गंभीर रूप से ध्यान करना चाहिये। मिट्टी दोमट हो जिसमें पी. एच. स्वाभाविक एवं जैविक पदार्थ कम हों तथा प्रदूषण रहित हो। पालन अवधि में जल का निकास कम हो इसलिये मिट्टी का निकास स्थानों से मुक्त होना आवश्यक है। रंगबिरंगी मछली पालन में यह ध्यान देना आवशक है कि प्रजातियों को उनके प्राकृतिक आवास में ही रखा जाय।

जल की गुणवत्ता एवं मात्रा

रंगबिरंगी मछली पालन के लिये जल की गुणवत्ता एवं मात्रा की उपलब्धता ठीक से होना चाहिये। यह एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण कारक है । यह अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है क्योंकि कुछ प्रजातियों का पालन वर्ष भर किया जाता है। सीमेंट या कंक्रीट से बने तालाबों/टैंक में गर्मी के दिनों में जल की कमी हो जाती है। इसके लिये जल के स्रोत हैं - नदी, झील, नहर, तालाब, जलाशय, धारा, कूप आदि। साथ ही ट्युबवेल या क्लोरिन रहित जल का प्रयोग भी किया जा सकता है। वैसे नदी एवं झील जल के उत्तम स्रोत हैं पर मौसमी आधार पर जल के गुणवत्ता जैसे आविलता, प्रदूषण आदि का भी परीक्षण किया जाना चाहिये। भौतिक एवं रासायनिक प्राचलों में महत्वपूर्ण प्राचल तापमान, आविलता, पी.एच., घुलित ऑक्सीजन, कठोरता, नाइट्रोजन तत्व, घुलित गैस एवं विषैले तत्व आदि । जल का परिशोधन तथा

एयरेशन से सुधार किया जा सकता है। आवश्यक पी,एच (6.5-8.2), कठोरता (70-120 पी.पी.एम), अमोनिया (0.025 पी.पी.एम.) तथा घुलित ऑक्सीजन (5-8 मि.ग्रा./ली.) होना चाहिये।

जलसंबंधी व मौसमसंबंधी कारक

जलसंबंधी कारक जैसे - जलबहाव दर, बाढ़ व जल संबधी सूचना तथा मौसम संबंधी कारकों में तापमान, वर्षा, वाष्पीकरण, सौर ऊर्जा आदि का पालन अवधि एवं प्रजनन काल में ध्यान रखना चाहिये।

जैव कारक

प्रजातियों के लिये उपयुक्त जैव कारकों का होना अति आवश्यक है। यह देखा गया है कि किसी क्षेत्र विशेष में कुछ प्रजातियों का विकास अच्छा होता है। मत्स्य आहार जीवों के प्रकार एवं उपलब्धता (पादपप्लवक एवं जंतुप्लवक आदि) विशेषकर मिट्टी के हंडियों में बहुत महत्वपूर्ण है। मत्स्य आहार जीवों में मुख्यतः इनफ्युसोरियन्स (छोटे जीवाश्म जैसे पैरामेसियम, स्टाइलोन्किया आदि को प्रथम आहार के रूप में व्यवहार किया जाता है),रोटीफर, क्लैडोसेरान, आर्टेमिया, कोपेपोड्स, ब्लड वर्म्स (किरोनोमस), केंचुये, ट्युबिफिक्स वर्म्स आदि हैं। साथ ही कुछ अवांछित जलीय पौधें, वीड फिश, भक्षक मत्स्य प्रजातियाँ, भक्षक पक्षी, सरीसृप, उभयचर, स्तनपायी तथा अवांछित बिना रीढ़ वाली प्रजाति आदि।

मछलियों का प्रजनन का कृषि में एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें दो प्रकार का प्रजनन व्यवहार है- एग लेयर्स एवं लाइव बियर्रस। एग लेयर्स से अंडों का छाड़न सबस्ट्रेटम में एक बार में या कई बार करते हैं। उनमें से कुछ कठोर सब्स्ट्रेटम पर अंडों को प्रत्यारोपित का देते हैं एवं कुछ अंडों को फैला देते हैं। जीवित प्रजनक अंडों को सेने के बाद छोड़ देते हैं।

सामाजिक-आर्थिक कारक

सामाजिक-आर्थिक कारकों में और सुविधा का प्रकार, विपणन संभावना तथा दूसरी क्षेत्र संबंधी सामाजिक पहलू जुड़े हुये हैं। उत्पादन मात्रा बाजार मांग, निवेश पर निर्भर करता है तथा पालन व्यवस्था (टैंक, बर्तन, मिट्टी की हंडिया, शीशे का टैंक

आदि) से यह पता चलता है कि सुविधायें किस स्तर एवं किस तरह की होनी चाहियें। यह बाजार संबंधी जानकारी आवश्यक है जिसके चार एप्रोच होना चाहियें-

- प्रथम ग्राहकों के मांग के अनुसार प्रजातियों का पालन
- आवास के लिये उपयुक्त प्रजातियों का प्रजनन व पालन
- केवल मत्स्य बीज का उत्पादन एवं पालकों को बिक्री
- ब्रीडर्स से स्पॉन की खरीद तथा बिक्री के लिये उपयुक्त आकार तक पालन

रंगबिरंगी मछली पालन तभी सफल होगा अगर उसकी मांग बाजार में अधिक हो। इसलियै व्यवसायिकों को हमेशा बाजार पर ध्यान रखना चाहिये। पर कुछ क्षेत्रों में गैरकानूनी तरीके से मछली पकड़ना भी एक समस्या है इसलिये उपयुक्त सुरक्षा व्यवस्था जरूरी है। अतः रंगबिरंगी मछली के एकीकृत पालन विकास से स्थानीय लोगों के लिये रोजगार के साधन एवं आर्थिक अवसर प्राप्त होगें।

दूसरी आवश्यकतायें

रंगबिरंगी मछली पालन के प्रजनन विशेषता एवं आवश्यकतायें विविध हैं। इसके मुख्य पहलूओं को तीन वर्गों में बॉटा जा सकता है।

1. प्रजनन
2. रियंरिंग
3. विपणन

प्रजनन के लिये चयनित मछलियों के प्रकार एवं परिचालन पर वांछित सुविधायें निर्भर करती हैं। गुपी, प्लेटी, मॉली, स्वोर्डफिश आदि प्रजनकों के लिये बेलनाकार सीमेंट के जलाशयों (90 से.मी. व्यास 60 से.मी. ऊँचाई) जिसमें नाली होती है या सीमेंट टैंक (1.2-2.0 मी. लम्बाई 0.6-1 मी. चौड़ाई) या बड़े टैंक (5 मी. × 2 मी. × 1 मी.) जिसमें जल निकास एवं आने के लिये पाइप लगे होते हैं का प्रयोग किया जा सकता है। चौकोर टैंक (50 से.मी. से कम वाले) कम जगह घेरते हैं तथा सभी को एक ही निकास पाइप से जोड़ा जा सकता है। ऐसे चौकोर टैंकों, निकास पाइप के साथ, को एक साथ स्थापित किया जाता है तथा दूसरी ओर बचे जगह को उपयोग में जाता है। इसी प्रकार बेलनाकार टैंकों को भी जगाया जा सकता है। इसके लिये इन सबके ऊपर एक बड़े टैंक, पंप सेट लगाना चाहिये जिससे जल का

टैंक में प्रवाहित किया जाता है। इसके लिये टैंक ढका होना चाहिये जिससे टैंक में अवांछित पदार्थों का समावेश न हो या अल्गी का विकास न हो सके।

छोटी मिट्टी की हंडियों (20-50 वर्ग मी. वाले) में प्रजनन, रियरिंग, मत्स्य बीजों का विकास एवं ब्रुड स्टॉक का प्रबंधन किया जाता है। कवई कार्प के लिये बड़े तालाबों की जरूरत होती है। जल निकास के लिये पाइप की सुविधा होना चाहिये। बड़े फार्मों में तालाबों की क्रम में सजाया जाना चाहिये जो एक ही निकास पाइप से जुड़े हों। इसके लिये 60 से. मी. ऊँचे दीवाल से घिरा होना चाहिये तथा चारों तरफ से जाल द्वारा घिरा हो जिससे टैंक में साँप, कछुओं, मेढ़क, पक्षियों तथा उदबिलाव को प्रवेश निषेध किया जा सके।

अधिकतर मछलियाँ जैसे पर्ल गौरामी, बार्ब्स, जेब्रा डेनियो आदि को प्रजनन के लिये प्रत्येक के साथ अलग-अलग टैंको में रखा जाता है। कुछ मछलियों का प्रजनन जैसे एंजेल फिश, ब्लु गौरामी आदि को शीशे के टैंक (60-90 से.मी. लम्बाई, 45 से.मी. चौड़ाई तथा 45 से. मी. ऊँचाई) में किया जाता है। व्यावसायिक इकाइयों में शीशे के टैंक को विभिन्न ऊँचाइयों पर जल निकास सुविधा के साथ स्थापित किया जाता है। उत्पादन इकाई के लिये अपेक्षित आवश्यकता 30 शीशे के टैंक, 20 सीमेंट टैंक (2 मी. × 1 मी.), 30 सीमेंट जलाशय तथा 10 मिट्टी की हंडियाँ हैं।

ब्लेंडर, बैलेंस, हीटर, ऑक्सीजन सिलींडर, जाल, ट्रे, बाल्टी आदि जैसे उपकरण तैयार होने चाहिये। भोजन निर्माण इकाई के लिये जगह होना चाहिये। अगर जरूरी हो तो क्षेत्र विशेष में ही भोजन तैयार किया जाना चाहिये। मछली के प्रदर्शन एवं बिक्री के लिये स्थान का बँटवारा होना चाहिये। अतः रंगबिरंगी मछली पालन उद्योग के विकास के लिये सांस्थानिक वित्तीय सहायता एवं लोन सुविधा के लिये एक व्यावसायिक इकाई की स्थापना की जानी चाहिये।

मीठा जल-कृषि - एक आर्थिक मूल्यांकन

प्रदीप कुमार कटिहा, प्रधान वैज्ञानिक
केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर

भूमिका

देश की भौगोलिक स्थिति व मानसून के वरदान के रूप में पर्याप्त वर्षापात होती है जिससे गहन जल-कृषि हेतु आवश्यक जल निकायों का उद्‌भव होता है। यह परिदृश्य देश के लगभग सभी राज्यों में देखा जा सकता है। अंतर्स्थलीय जल कृषि को तेजी से विकसित होने वाले उद्योगों में से एक माना गया है। अस्सी दशक के आरम्भ से ही इस उद्योग में तेजी से विकास दर्ज हुआ है, विशेषकर मिश्रित मत्स्य पालन तकनीक को अपनाने के उपरान्त। इस उद्योग के विस्तार हेतु किए जा रहे विभिन्न स्तर के प्रयासों के बावजूद उपलब्ध कुल अंतर्स्थलीय जल निकायों का एक तिहाई भाग ही वैज्ञानिक मत्स्य पालन के अंतर्गत लाया जा सका है। मत्स्य उत्पादन वाले कुल क्षेत्र का आधे से अधिक भाग मत्स्य पालक विकास अभिकरण (FFDA) के अधीन है। अभिकरण की देखरेख में मत्स्य उत्पादन वाले तालाबों की राष्ट्रीय औसत उत्पादकता वर्ष 1974-75 में 50 कि.ग्रा./हे./वर्ष से बढ़कर वर्ष 1994-95 में 2135 कि.ग्रा./हे./वर्ष हो गई। अन्य जल संसाधनों के उपयोग हेतु आवश्यक प्रयास किया जाना है। अंतर्स्थलीय मत्स्य उत्पादन मुख्यतः कार्प मछलियों पर आधारित है। कुल उत्पादन का 93% भाग देशी एवं विदेशी कार्प मछलियों का है। आर्थिक मूल्यांकन के लिए निम्नलिखित तथ्यों पर ध्यान देना है:-

क्या उत्पादन करें ? - अर्थात यह निर्णय करना है कि किन प्रजातियों का तथा किस परिमाण में उत्पादन करना है। इससे उपलब्ध संसाधनों को विभिन्न प्रकार की मछलियों जैसे- कार्प, कैटफिश, झींगा, वायु श्वासी मछलियाँ आदि के लिए आबंटित किया जा सके।

उत्पादन कैसे करें - उत्पादन किए जानेवाली मछलियों व परिमाण के निर्णय के बाद उपलब्ध संसाधनों के आधार पर उत्पादन तकनीक का चयन किया जाना चाहिए।

किसके लिए उत्पादन करें - उत्पादन क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति व मांग के अनुरूप उत्पादन किया जाना चाहिए ताकि अधिकतम बिक्री व लाभ हो।

आर्थिक विश्लेषण द्वारा मत्स्य उत्पादन गतिविधियों (मत्स्य बीज व बड़ी मछलियों का पालन) की आर्थिक जानकारी मिल सकती है। आर्थिक लागत दो प्रकार की होती है :—

अचल (fixed) एवं चल (variable) लागत। अचल लागत वह खर्च है जो उत्पादन की गहनता से प्रभावित नहीं होती जबकि चल लागत उत्पादन प्रक्रिया के अनुरुप घटती-बढ़ती है। लागत आकलन हेतु निम्नलिखित विषयों की जानकारी आवश्यक है :—

अचल लागत

गियर व नेट

इस पर आनेवाले लागत आकलन हेतु इसके परिमाण, सामग्री (नॉयलान व सूती), प्रकार (गिल, ड्रैग, कास्ट, डिप नेट), कार्यकाल, मूल्य आदि की सूचनायें आवश्यक है।

क्राफ्ट या नाव

इस मद के आकलन हेतु नावों की संख्या, किस प्रकार का नाव हो, नाव का आमाप व नाव बनाने के लिए उपयोगी सामग्री, कार्यकाल, मूल्य आदि पर निर्भर करता है।

तालाब की तैयारी

तटबंधों की मरम्मत, निचली सतह को समतल बनाना, खरपतवारों का उन्मूलन, उर्वरण, चूना उपयोग आदि से संबंधित खर्च इस शीर्ष के अंतर्गत आता है।

जलीय संसाधन

जलीय संसाधन में पट्टे पर लेने संबंधी खर्च आते हैं ।

अचल लागत पर ब्याज

कुल अचल लागत पर बैंक दर के हिसाब से ब्याज का परिकलन करना चाहिए।

उर्वरक, गोबर और चूने का प्रयोग

जल की गुणवत्ता बनाए रखने हेतु कार्बनिक व अकार्बनिक उर्वरकों, गोबर और चूने का प्रयोग किया जाता है। अतः इनके मूल्यों का आकलन आवश्यक है।

स्वास्थ्य प्रबन्धन

मत्स्य स्वास्थ्य रक्षा के लिए कुछ दवाओं व रसायनों की भी आवश्यकता होती है, अतः इन पर आनेवाले खर्च का आकलन होना चाहिए।

चल लागत

मत्स्य बीज

इस खर्च के लिए विभिन्न प्रजातियों का अनुपात, आमाप, संग्रहण दर, मूल्य आदि का आकलन आवश्यक है।

मत्स्य आहार

मत्स्य आहार के विभिन्न प्रकार की सामग्री का परिमाण व मूल्य का परिकलन आवश्यक है।

मजदूरी

मत्स्य पालन की विभिन्न अवस्थाओं में मजदूरों की आवश्यकता होती है। पूरी अवधि में मजदूरी मद पर आनेवाले खर्च का आकलन भी आवश्यक है।

परिवहन

मत्स्य बीज, आहार, उर्वरक, खाद आदि लाने एवं मछलियों को ले जाने संबंधी परिवहन खर्च का आकलन।

विपणन

मछलियों को बेचने संबंधी खर्च।

अन्य फुटकर खर्च

उपर्युक्त खर्च के अलावा किसी आकस्मिक प्रकार के खर्च का प्रावधान जैसे - जल स्तर को बनाए रखने हेतु आवश्यक खर्च।

चल *लागत पर ब्याज*

चल लागत पर भी बैंक दर से ब्याज का परिकलन किया जाना चाहिए।

इस प्रकार अचल लागत व चल लागत दोनों को मिलाकर कुल लागत निकाली जाती है।

भारत में उपलब्ध विभिन्न जलकृषि तकनीकों के अंतर्गत मत्स्य बीज व बड़ी मछलियों की उत्पादन आर्थिकी

विभिन्न जलकृषि तकनीकी प्रणालियों के अंतर्गत मत्स्य बीज व मत्स्य उत्पादन से संबंधित आर्थिक निवारण निम्नलिखित है -

मत्स्य बीज उत्पादन

मत्स्य बीज उत्पादन की तीन अवस्थाऐं हैं जैसे - जीरा उत्पादन, पोना उत्पादन एवं

अंगुलिकाओं का उत्पादन। अतः जीरों से पोना उत्पादन का आर्थिक विवरण तालिका 1 में दर्शाया गया है। एक वर्ष में 3-4 फसल प्राप्त की जा सक्ती है, जिससे 3.6 से 4.8 मिलियन प्रति हे. पोनों का उत्पादन होता है। कुल लागत का लगभग 62% मत्स्य बीज एवं तालाब की तैयारी में खर्च होता है। नर्सरी प्रबन्धन कार्य में लाभ व लागत का अनुपात 1.5 होता है। तीसरी अवस्था, पोनों से अंगुलिकाओं तक के पालन में लागत का अधिकतम भाग मत्स्य आहार, संसाधन की पट्टे की राशि, बीज पर खर्च होता है। इस पालन से औसतन प्रति वर्ष 0.15 मिलियन अंगुलिकाओं का उत्पादन होता है। लाभ व लागत का अनुपात 1.32 होता है।

तालिका - 1 मत्स्य बीज उत्पादन की आर्थिकी

रू. प्रति हे.

विवरण	नर्सरी	पालन
क्षेत्रफल	1 हे.	1 हे.
पट्टे की राशि/फसल नर्सरी के लिए	5000	15000
तथा रू०/वर्ष पालन के लिए)	(10.53)	(18.87)
तालाब की तैयारी		
परभक्षी एवं अपतृण उन्मूलन	7500	7500
	(15.79)	(9.43)
कीट नियंत्रण	1000	
	(2.11)	
खाद का प्रयोग	7500	4000
	(15.79)	(5.03)
बीज (स्पान 3 मिलियन, जीरा 2 लाख)	15000	12000
	(31.58)	(15.09)
संपूरक आहार	4500	24000
	(9.47)	(30.19)
श्रमिक खर्च	5000	12000
	(10.53)	(15.09)
अन्य खर्च	2000	5000
	(4.20)	(6.29)
कुल राशि	47500	79500
आय (उत्तरजीविता दर 40 %)	72000	
आय (उत्तरजीविता दर 75 %)		105000
लाभ	24500	25500
लाभ का अनुपात	1.5	1.32

खाने योग्य आमाप तक मछली/झींगा पालन

मीठे एवं मल जल में कॉर्प पॉलीकल्चर या मिश्रित कॉर्प पालन में उपलब्ध तकनीकी प्रणालियाँ हैं एकीकृत मत्स्य पालन, पेन पालन, वायु-श्वासी मत्स्य पालन, मीठाजल झींगा पालन और कार्प व झींगा पालन। इन पालन प्रणालियों से संबंधित आर्थिक विवरण इस प्रकार है –

कॉर्प पॉलीकल्चर या मिश्रित कॉर्प पालन

सामान्यतः भारत में कॉर्प पालन हेतु भारतीय मेजर कॉर्प की 3 प्रजातियाँ या भारतीय कॉर्प की 3 प्रजातियों के साथ-साथ 3 विदेशी कॉर्प प्रजातियों के पालन की सलाह की जाती है। इस मिश्रित पालन तकनीक को बाजार की मांग एवं संसाधनों की उपलब्धता के अनुसार कई परिवर्तनों के साथ अपनाई जाती है।

निम्न, मध्यम व गहन कॉर्प पालन

कॉर्प पालन के विभिन्न तकनीकी प्रणालियों में लागत और आय का अनुपात तालिका - 2 में दर्शाया गया है। लागत के अंतर्गत जल निकाय के पट्टे की राशि, कार्बनिक खाद व अकार्बनिक उर्वरकों की खर्च, मत्स्य बीज, मत्स्य आहार, प्रबन्धन व उपज प्राप्ति खर्च आदि आती हैं। जन निकाय के पट्टे की राशि इसकी उत्पादकता, गुणवत्ता व प्रबन्धन व्यवस्था पर आधारित होती है।

मलजल (Sewage) पोषित व खरपतवारों से अवरुद्ध जलकृषि

मलजल पोषित व खरपतवारों से अवरुद्ध जल कृषि तकनीकी प्रणालियों में लागत के विभिन्न घटकों तथा आय व लाभ का अनुपात तालिका - 3 में दर्शाया गया है। लागत में प्रमुखतः पट्टे की राशि, तालाब की तैयारी संबंधी खर्च, वाहित मल, बीज, मजदूरी, मलजल पोषित जल कृषि से उपज प्राप्त करने संबंधी खर्च आदि हैं। कुछ मत्स्य पालक मल जल पोषित मत्स्य उत्पादन में भी पूरक आहार देते है जिसका मूल्य कुल लागत का 30% से अधिक होता है। इस मत्स्य उत्पादन से प्रति हे. शुद्ध लाभ रु 36788/- (पूरक आहार दिए बिना) से रु 59163/- (पूरक आहार दिए जाने पर) के बीच होता है। मलजल पोषित मत्स्य उत्पादन के सभी तकनीकी प्रणालियों में प्रायः ऐसा ही लाभ होता है। खरपतवारों से भरे संसाधनों में इनके उन्मूलन कार्य हेतु मजदूरी के रुप में अधिक खर्च होता है। इस प्रकार के संसाधनों में मत्स्य पालन से लागत व आय का अनुपात्त 1.73 होता है।

तालिका - 2 बहुप्रजातीय कार्प पालन प्रणालियों की आर्थिकी

रू प्रति हे.

विवरण	निम्न निवेष	मध्यम निवेष	उच्च निवेष
पट्टे की राशि/वर्ष	10000	10000	10000
	(23.85)	(8.31)	(3.26)
तालाब की तैयारी	7500	7500	7500
	(17.89)	(6.23)	(2.45)
खाद एवं चूना	10000	7500	7500
	(23.85)	(6.23)	(2.45)
अंगुलिका (बीज)	3500	7000	20000
	(8.35)	(5.81)	(6.53)
मत्स्य आहार		60000	200000
		(49.83)	(65.28)
मजदूरी (प्रबंधन, अपतृण संग्रहण, उपज प्राप्ति)	5000	15000	30000
	(11.93)	(12.46)	(9.79)
अन्य खर्च	3000	5000	10000
	(7.15)	(4.15)	(3.26)
ब्याज	2925	8400	21375
	(6.98)	(6.98)	(6.98)
कुल खर्च	41925	120400	306375
मत्स्य पैदावार (टन)	2.5	6	12.5
आय			
मछली	75000	180000	375000
कुल आय	75000	180000	375000
लाभ	33075	59600	68625
लाभ का अनुपात	1.79	1.50	1.22

तालिका - 3 मलजल पोषित व खरपतवार आधारित मत्स्य पालन की आर्थिकी

रू. प्रति हे.

विवरण	पूरक आहार के बिना	पूरक आहार के साथ	खरपतवार आधारित
पट्टे की राशि/वर्ष	10000	10000	10000
	(18.79)	(11.01)	(19.18)
तालाब की तैयारी	7500	7500	7500
	(14.09)	(8.26)	(14.39)
उर्वरक एवं चूना	2500	2500	2500
	(4.71)	(2.75)	(4.80)
अंगुलिकाएँ (मत्स्य बीज)	7000	7000	3500
	(13.15)	(7.71)	(6.71)
पूरक आहार		30000	
		(33.03)	
मलजल लागत	7500	7500	
	(14.09)	(8.26)	
मजदूरी (प्रबंधन, अपतृण संग्रहण, उपज प्राप्ति)	10000	15000	20000
	(18.79)	(16.50)	(38.35)
अन्य खर्च	5000	5000	5000
	(9.40)	(5.50)	(9.59)
ब्याज	3712.5	6337.5	3637.5
	(6.98)	(6.98)	(6.98)
कुल लागत	53212.5	90837.5	52137.5
मत्स्य उपज (टन)	3	5	3
कुल अय	90000	150000	90000
लाभ	36787.5	59162.5	37862.5
लाभ का अनुपात	1.69	1.65	1.73

एकीकृत मत्स्य पालन - एकीकृत मत्स्य पालन के अंतर्गत दो या दो से अधिक खाद्य वस्तुओं का उत्पादन एक साथ किया जाता है जैसे - धान व मत्स्य पालन, मत्स्य व पशुधन पालन, सुअर व मत्स्य पालन, बत्तख व मत्स्य पालन, मुर्गी व मत्स्य पालन।

विभिन्न प्रकार के एकीकृत मत्स्य पालन पद्धतियों में लागत व आय का विवरण तालिका - 4 में दर्शाया गया है। एकीकृत मत्स्य पालन में सामान्यतः पूरक आहार का उपयोग नहीं होता है। इस प्रकार की उत्पादन प्रणाली में 1 से 3 टन का मत्स्य उत्पादन होता है। इन पद्धतियों में अधिकतम लागत (रु० 104813/-) मुर्गी व मत्स्य पालन में तथा न्यूनतमक लागत (रु 43538/-) धान व मत्स्य पालन में आती है। मुर्गियों के आहार का उच्च मूल्य के कारण लागत खर्च अधिक होती है। धान व मत्स्य पालन में शुद्ध लाभ रु० 16462/- से बत्तख व मत्स्य पालन में रु० 48617/- के बीच

होता है। लागत व आय का अनुपात 1.79 होता है। अन्य एकीकृत प्रणालियों में यह अनुपात 1.38 से 1.62 के बीच होता है। चूँकि ग्रामीण क्षेत्रों में सुअर पालन वर्जित है, अतः इस एकीकृत प्रणाली को उन क्षेत्रों में ही अपनाया जा सकता है जहाँ पहले से ही सुअर पालन होता है।

तालिका - 4 एकीकृत मत्स्य पालन का लागत व आय

रू. प्रति हे.

विवरण	एकीकृत मत्स्य पालन			
	बत्तख	मुर्गी	सूअर	धान
पट्टे की राशि/वर्ष	10000 (16.29)	10000 (9.54)	10000 (16.76)	5000 (11.48)
तालाब की तैयारी	7500 (12.22)	7500 (7.16)	7500 (12.57)	2000 (4.59)
खाद व चूना	2500 (4.07)	2500 (2.39)	2500 (4.19)	2500 (5.74)
अंगुलिकाएँ	3500 (5.7)	3500 (3.34)	3500 (5.87)	3500 (8.04)
पक्षी/पशु	3600 (5.86)	4000 (3.82)	4500 (7.54)	
धान				7500 (17.23)
आहार	10000 (16.29)	50000 (47.70)	7500 (12.57)	
मजदूरी (प्रबंधन, अपतृण संग्रहण, उपज प्राप्ति)	15000 (24.44)	15000 (14.30)	15000 (25.14)	15000 (34.46)
अन्य खर्च	5000 (8.15)	5000 (4.77)	5000 (8.38)	5000 (11.48)
ब्याज	4282.5 (6.98)	7312.5 (6.98)	4162.5 (6.98)	3037.5 (6.98)
कुल लागत	61382.5	104812.5	59662.5	43537.5
मत्स्य उपज (टन)	3	3	3	1
अन्य उपज	मांस : 2 क्विंटल, अण्डे : 8000	मांस : 5 क्विंटल, अण्डे : 28,000	मांस 16 क्विंटल,	5 टन
आय				
मछलियाँ	90000	90000	90000	30000
अन्य	20000	58000	6400	30000
कुल आय	110000	148000	96400	60000
लाभ	48617.5	43187.5	36737.5	16462.5
लाभ का अनुपात	1.79	1.41	1.62	1.38

वायु श्वासी मछलियों का पेन कल्चर व एकल/बहु प्रजातीय मत्स्य पालन

भारत के विभिन्न राज्यों में आर्द्र क्षेत्रों को *बील, मॉन, चौर* या *पैट* कहा जाता है। यद्यपि इन संसाधनों में अत्यधिक उत्पादन क्षमता 1000 कि.ग्रा. प्रति हे. है, परन्तु वास्तव में इन संसाधनों से औसतन 120-300 कि.ग्रा. प्रति हे. उपज प्राप्त होती है। इस उत्पादन दर में वृद्धि हेतु संसाधनों से केवल मछलियाँ पकड़ने की प्रथा के विपरीत इनमें तालाबों जैसा मत्स्य पालन कार्य प्रारम्भ हुआ है जिससे बेहतर उपज दर प्राप्त हुई है। पेन पालन प्रणाली में पेन निर्माण (रु० 30,000) एवं पूरक आहार (रु० 20,000) पर खर्च कुल लागत का 50% होता है। इस प्रणाली से शुद्ध लाभ रु० 18,950/- तथा लागत आय का अनुपात 1.19 होता है (तालिका-5)।

तालिका - 5 पेन पालन एवं वायुश्वासी मत्स्य पालन प्रणालियों की आर्थिकी

रू० प्रति हे.

विवरण	पेन पालन प्रणाली	वायुश्वासी मत्स्य पालन प्रणाली
पट्टे की राशि	2000	10000
	(1.98)	(5.81)
तालाब की तैयारी	7500	7500
	(7.42)	(4.36)
खाद व चूना	7500	7500
	(7.42)	(4.36)
अंगुलिकाएँ	7000	20000
	(6.93)	(11.63)
पेन निमार्ण	30000	
	(29.69)	
मत्स्य आहार	20000	80000
	(19.79)	(46.51)
मजदूरी (प्रबंधन, अपतृण संग्रहण, उपज प्राप्ति)	15000	30000
	(14.84)	(17.44)
अन्य खर्च	5000	5000
	(4.95)	(2.91)
ब्याज	7050	12000
	(6.98)	(6.98)
कुल लागत	101050	172000
मत्स्य उपज (टन)	4	4
आय		
मछलियाँ	120000	240000
कुल आय	120000	240000
लाभ	18950	68000
लाभ का अनुपात	1.19	1.40

वायु श्वासी मत्स्य पालन में अंगुलिकाओं पर खर्च अधिक होता है। इस प्रणाली में आहार पर कुल लागत का 50% खर्च होता है (तालिका-5) । शुद्ध लाभ रु० 68,000/- तथा लाभ का अनुपात 1.40 होता है ।

मीठाजल झींगों का एकल पालन या पॉलीकल्चर

इस पालन पद्धति के लिए 0.1 से 2.0 हे. क्षेत्रफल वाले आयताकार तालाब उपयुक्त होता है जिनसे प्रदूषण रहित जल एवं ऑक्सीजन का उच्च स्तर हो। मीठाजल झींगों के एकल पालन तथा कॉर्प मछलियों के साथ झींगा पालन प्रणालियों से संबंधित लागत का विवरण तालिका - 6 में दर्शाया गया है। एकल पालन प्रणाली में झींगा बीजों पर अधिक खर्च (रु० 30,000/-) होता है। पूरक आहार पर एकल पालन प्रणाली में 37% तथा कार्प मछलियों के साथ पॉलीकल्चर में 47% लागत आता है। एकल पालन प्रणाली में मजदूरी पर भी अधिक खर्च होता है क्योंकि झींगों को भोजन देने एवं जल की गुणवत्ता बनाए रखने में मजदूरों की आवश्यकता होती है। झींगों के एकल पालन से रु० 1.39 लाख तथा कार्प मछलियों के साथ पॉलीकल्चर में रु० 71,750 का शुद्ध लाभ होता है। झींगों के एकल पालन में लागत-आय का अनुपात अधिक 1.86 होता है।

तालिका - 6 मीठाजल झींगों का एकल पालन एवं कार्प व झींगा पालन की आर्थिकी

रू० प्रति हे.

विवरण	मीठाजल झींगों का एकल पालन	कार्प व झींगा पालन
पट्टे की राशि	10000	10000
	(6.20)	(8.46)
तालाब की तैयारी	7500	7500
	(4.65)	(6.34)
खाद व चूना	7500	7500
	(4.65)	(6.34)
अंगुलिकायें	30000	15000
	(18.60)	(12.69)
मत्स्य आहार	60000	50000
	(37.22)	(42.28)

विवरण	मीठाजल झींगों का एकल पालन	कार्प व झींगा पालन
मजदूरी (प्रबंधन, अपतृण संग्रहण, उपज प्राप्ति)	30000	15000
	(18.60)	(12.68)
अन्य खर्च	5000	5000
	(3.10)	(4.23)
ब्याज	11250	8250
	(6.98)	(6.98)
कुल लागत	161250	118250
मत्स्य उपज (टन)	1.5	3
अन्य उत्पादन		0.5 टन
आय		
मत्स्य/झींगा	300000	90000
अन्य	100000	
कुल आय	300000	190000
लाभ 138750	71750	
लाभ का अनुपात	1.86	1.61

जल कृषि/मात्स्यिकी योजनाओं/परियोजनाओं के प्रतिपादन हेतु कुछ आवश्यक सुझाव

प्रदीप कुमार कटिहा एवं नागेश कुमार बारिक*
केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर
* केन्द्रीय मीठा जलजीव पालन अनुसंधान संस्थान, भुवनेश्वर

भूमिका

भारत में मात्स्यिकी एवं जल कृषि का प्रचलन वर्षों पुराना है। वर्ष के कई महीनों तक लोग इस कार्य से जुड़े रहते हैं। मात्स्यिकी एवं जलकृषि से संबंधित पद्धतियों में क्रमिक बदलाव हो रहे हैं। ये पद्धतियाँ घरेलू स्तर पर प्रारम्भ हो कर अब एक पूर्ण उद्योग के रूप में विकसित हो रहा है। देश के कई भागों में इस प्रकार का विकास हो रहा है। ये विकास और बदलाव मूलतः तकनीकी प्रणालियों को अपनाने, सूचनाओं के आधार पर कार्य करने, संस्थागत एवं मूलभूत सुविधाऐं तथा ऋण संबंधी हैं। अतः मत्स्य योजनाओं का उद्देश्य इसे एक आधुनिक व्यवसायिक उद्योग का रुप देना है जिसके तहत उपलब्ध अवसरों, कमियों, लाभ व लागत का मूल्यांकन हो। इस प्रकार के मूल्यांकन को परियोजना मूल्यांकन कहा जाता है क्योंकि कार्यों की कड़ी को परियोजना कहा जाता है।

परियोजना मूल्यांकन के सामान्य पहलू

परियोजना/योजना की संकल्पना

मात्स्यिकी व जलकृषि हेतु प्रस्तावित कार्यों की सम्पूर्ण सूची को परियोजना कहा जाता है। परियोजना में संसाधन का विवरण, प्रस्तावित कार्यों का ब्यौरा, कार्य पर लागत तथा इन कार्यों से सम्भावित लाभ का समावेश किया जाता है। परियोजना एक निवेश प्रस्ताव है जिसके तहत एक निश्चित समय में एक निश्चित उद्देश्य की पूर्ति का प्रयास किया जाता है।

परियोजना की पहचान करना

परियोजना का समझने की आवश्यकता है ताकि परियोजना के मूल उद्देश्यों की

रुप रेखा प्रस्तुत कर परियोजना की व्यवहार्यता को स्थापित किया जा सके। परियोजना की व्यवहार्यता का अर्थ है परियोजना में उद्देश्य पूर्ति की क्षमता। परियोजना से प्राप्त परिणाम तकनीकी, वित्तीय व आर्थिक रूप से व्यवहारिक होना चाहिए।

परियोजना की तैयारी

परियोजना की पहचांन करने के बाद इसकी तैयारी की जानी चाहिए। परियोजना की तैयारी के लिए इसके उद्देश्य की विशिष्टता, आवश्यक संसाधन, लागत व अन्य निवेश तथा संभावित परिणामों की स्पष्ट जानकारी होनी चाहिए। परियोजना तैयारी के दौरान इसकी तकनीकी, आर्थिक व सामाजिक व्यवहारिकता पर भी विचार किया जाना चाहिए।

परियोजना की व्यवहारिकता के आधार पर ही आवश्यक वित्तीय संसाधन जुटाये जाते हैं। परियोजना हेतु वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराने वाली संस्थाऐं भी स्वतः परियोजना का मूल्यांकन करती है। मूल्यांकन से यह स्थापित होता है कि परियोजना के संकल्प उचित एवं विश्वसनीय हैं। परियोजना की तकनीकी पहलूओं जैसे उपज, परियोजना में निहित कार्यों पर खर्च का विवरण, वित्तीय व आर्थिक व्यवहार्यता से संबंधित पूर्वानुमान की जाँच होती है।

परियोजना पर चर्चा

चर्चा के दौरान परियोजना प्रस्तुत करनेवाला पक्ष एवं परियोजना हेतु राशि उपलब्ध कराने वाला पक्ष दोनों ही अपने अपने तौर पर योजना के विभिन्न पहलुओं को स्पष्ट करने तथा दूसरे पक्ष को सहमत करने का प्रयास करते हैं। चर्चा की सफलता पर ऋण की मंजूरी आधारित होती है।

परियोजना पर्यवेक्षण

परियोजना के पर्यवेक्षण से यह सुनिश्चित किया जाता है कि परियोजना का कार्यान्वयन सुचारु रुप से किया जा रहा है और लक्ष्यों की प्राप्ति हो रही है। इस पर्यवेक्षण की सहायता से प्रगति रिपोर्ट तैयार की जाती है।

परियोजना का प्रतिपादन कैसे किया जाए

परियोजना का आर्थिक औचित्य का मूल्यांकन वित्तीय संसाधन उपलब्ध

करनेवाली संस्था की आवश्यकताओं के अनुरुप किया जाना चाहिए। सामान्यतः एक परियोजना के प्रतिपादन के निम्नलिखित मद होते हैं -

प्रस्तावित कार्यों की प्रकृति

प्रस्तावित कार्य एवं इसकी प्रकृति का पूर्ण विवरण होना चाहिए उदाहरणार्थ - किसानों द्वारा हैचरी स्थापित करना, बीज उत्पादन फार्म तैयार करना, मत्स्य उत्पादन करना आदि। नयी परियोजना या वर्तमान कार्य में सुधार संबंधी परियोजना।

जब कृषक एक नयी परियोजना का प्रतिपादन करता है तो उसे आर्थिक पहलूओं पर विशेष ध्यान देना चाहिए और नए कार्यों में कुछ ऐसे खर्च हो सकते हैं जो वर्तमान में प्रकट नहीं हुए हैं। वर्तमान कार्य में सुधार संबंधी परियोजनाऐं किसानों के लिए सुविधाजनक होती है चूँकि किसानों को इन कार्यों का अनुभव होता है।

संसाधनों की उपलब्धता

संसाधनों का अर्थ भौतिक व वित्तीय संसाधनों से है। भौतिक संसाधन के अंतर्गत भूमि, तालाब, वृक्ष् भवन, मशीनरी आदि तथा वित्तीय संसाधन यानी पैसा, सोना आदि जिससे परियोजना के लिए आवश्यक वस्तुओं की व्यवस्था हो सके। संसाधन का पूर्ण विवरण दिया जाना चाहिए।

क्षमता एवं कौशलता

उपलब्ध क्षमता एवं कौशलता का पूर्ण विवरण दिया जाना चाहिए। मात्स्यिकी से संबंधित कार्यों में काफी अनुभव एवं निपुणता की आवश्यकता होती है। अनुभवी किसान परियोजना प्रतिपादन में अधिक सफल होते हैं। यदि निपुणता या कौशलता में कमी हो तो इसे प्राप्त करने की योजना का भी उल्लेख किया जाना चाहिए। यदि किसी प्रकार का प्रशिक्षण आदि प्राप्त किया गया तो इसका भी उल्लेख किया जाना चाहिए।

आवश्यक संसाधनों का विवरण

परियोजना के लिए आवश्यक सभी प्रकार के संसाधनों का उल्लेख किया जाना

चाहिए। भूमि, तालाब, मशीनरी आदि से संबंधित लागत का आकलन तथा इस लागत में किसान का योगदान, शेष कितने रूपयों की आवश्यकता है इसका स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए।

परियोजना की कुल लागत

लागत खर्च दो प्रकार का होता है-पहला निश्चित/स्थायी लागत (fixed costs) और दूसरा परिवर्तनीय लागत (variable costs)। निश्चित/स्थायी लागत वह खर्च है जो एक से अधिक फसलों के लिए किया जाता है जैसे- भवन/तालाब का मरम्मत, पम्प सैट, मशीनरी आदि। मजदूरी, आहार, उर्वरक, दवाईयाँ व अन्य निवेश प्रत्येक फसल के लिए किया जाना है, जिसे परिवर्तनीय लागत कहा जाता है। अतः निश्चित/स्थायी लागत व परिवर्तनीय लागत का अन्तर समझना आवश्यक है। निश्चित/स्थायी लागत को पूँजीगत लागत (capital costs) भी कहा जाता है और अनेक वित्तीय योजनायें किसानों के पूँजीगत लागत हेतु बनी हुई हैं।

परियोजना से लाभ व आय

परियोजना से आय का अर्थ है परियोजना से प्राप्त वित्तीय लाभ। परियोजना के उत्पादन का बाजार मूल्य नेट इक्नोमिक रिटर्न माना जाता है। परियोजना से लाभ इससे प्राप्त प्रत्यक्ष वित्तीय आय से बढ़कर हो सकती है जैसे परियोजना के कारण परिवेश में शीतलता आना, भौम जल का रिचार्ज होना, घरेलू व पशुधन उपयोग हेतु जल उपलब्ध होना, दूरस्त क्षेत्रों में मछलियों की उपलब्धता, स्थानीय लोगों का रोजगार आदि। परियोजना प्रतिपादन के दौरान इन विषयों का भी उल्लेख किया जाना चाहिए ताकि वित्तीय सहायता देनेवाली संस्था को सहमत किया जा सके।

लागत व लाभ का विश्लेषण

लागत व लाभ विश्ले-ाण के कई तरीकें हैं, इनमें नॉन-डिसकाउंटिंग एवं डिसकाउंटिंग पद्धतियाँ महत्वपूर्ण हैं। परियोजना प्रतिपादन के प्रारम्भ में परियोजना विश्लेषण हेतु नॉन-डिसकाउंटिंग पद्धति को अपनाना सरल होगा।

परियोजना की आर्थिक व्यवहार्यता

परियोजना की आर्थिक व्यवहार्यता मुख्यतः इसके लागत व आय पर निर्भर करता है। परियोजना का आय परिवर्तनीय लागत से अधिक होना चाहिए जिससे नगदी लाभ स्पष्ट हो। कुल लागत से अधिक प्राप्त आय ही शुद्व लाभ है। ऋण देनेवाली संस्था लाभकारी उद्योग पर ही ध्यान देती है।

ऋण व ऋण भुगतान

विश्लेषण के बाद किसान को आवश्यक ऋण के संबंध में स्पष्ट उल्लेख करना चाहिए। ऋण की राशि के अनुसार इसके भुगतान हेतु किश्तों की राशि एवं संख्या का भी उल्लेख किया जाना चाहिए। अर्जित लाभ का कुछ अंश से ऋण का भुगतान करना होता है। सामान्यतः बैंक आदि में भुगतान हेतु निर्धारित तालिकायें होती हैं जिसके तहत एक निश्चित अवधि में ऋण का भुगतान करना पड़ता है।

***